



















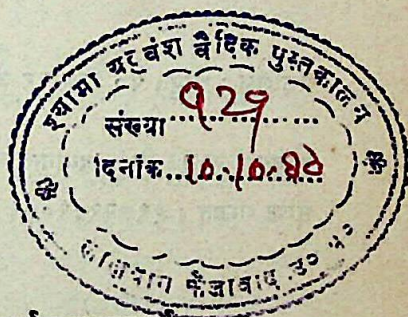






# शतपथ ब्राह्मणम्

त्रयोदश काण्डम्  
अश्वमेध प्रकरणम्  
(हिन्दी व्याख्योपेता)



व्याख्याकार

डा० विजयपाल शास्त्री, धर्मशास्त्राचार्य,

एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, डी०ए-वी० कालेज, कानपुर

*Handwritten signature:* Anand Karna  
*Handwritten date:* 10.10.1980



## राष्ट्रगान

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।  
आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽति व्याधी महारथो जायताम् ।  
दोग्ध्री घेनुर्वोढानड्वान् आशु सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः  
समेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् ।  
निकामे निकामे न पंजन्यो वर्षतु फलवत्यो नः ओषधयः पच्यन्ताम् ।  
योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

प्रकाशक : श्रीयुत पं० विद्याधर जी, मंत्री, वैदिक शोध संस्थान,  
डी०ए-वी० कालेज, कानपुर  
सम्बत् : २०३३ वि०—दयानन्दाब्द : १५३—शिवरात्रि १६-२-७७  
सृष्टि सम्बत् : १९७२९४९०७६

मूल्य : ५ रुपया

मुद्रक : अमलतास प्रेस, परेड, कानपुर ।



## ओ३म्

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।

यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ (ऋग्० १-३-१०) (१।१।६।४) यजु० २०/८४

## प्राक्कथन

शतपथ ब्राह्मण के १३वें काण्ड का “अश्वमेध प्रकरण” कानपुर विश्वविद्यालय के अतिरिक्त सम्प्रति विभिन्न विश्व विद्यालयों की एम० ए० अन्तिमवर्ष (वेद ग्रुप) संस्कृत परीक्षा के पाठ्यक्रम में स्वीकृत है ।

इस समय विद्यार्थियों के लिये शतपथ ब्राह्मण सम्पूर्ण (मूल) तो लगभग २५०) में उपलब्ध हो जाता है किन्तु केवल १३वें काण्ड अश्वमेध प्रकरण नहीं । साधारण विद्यार्थी इतनी घनराशि व्यय करने में असमर्थ होता है । अस्तु विद्यार्थियों की सुविधा को ध्यान में रखते हुये, प्रत्येक अध्याय के ब्राह्मण के भाव को अश्वमेध प्रकरण का हिन्दी भाष्य सरल भाषा में प्रस्तुत किया जा रहा है । वेद के स्वाध्याय करने वाले विद्यार्थियों तथा याज्ञिकों को यह लघुकाय ग्रन्थ एक नवीन दिशा एवं प्रेरणा प्रदान करेगा ।

इस दुर्लभ कार्य को, हिन्दी भाषा के रूप में, करने के निमित्त, सम्पादन करने की प्रेरणा पितृतुल्य समादरणीय पं० विद्याधर जी, प्रधान-आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश, लखनऊ ने दी । जिसके फलस्वरूप वेदग्रुप लेने वाले विद्यार्थियों को बड़ा उपकृत किया । भविष्य में भी यही कामना करता हूँ कि विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमानुसार ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के कुछ सूक्त, यजुर्वेद के अन्तिम कुछ अध्याय, एवं अथर्ववेद के कुछ सूक्तों का भी सायणाचार्य एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती के संस्कृत-भाष्य एवं हिन्दी भाष्य-पदपाठ, व्याकरण आदि सहित छपवाने की कृपा करेंगे । इससे विद्यार्थियों को अधिक सुविधा होगी ।

वैदिक यज्ञों के प्रतिपादक ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थ आत्मा तथा परमात्मा विषयक, अलौकिक सिद्धान्तों के प्रतिष्ठापक उपनिषद् ग्रन्थ, सामाजिक रीतियों और व्यवस्थाओं पर अंकुष्ठित निर्णय देने वाले श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र एवं कल्पसूत्र, इन सबका उद्गम वैदिक संहिताओं से हुआ है । इनमें आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक सभी अनेक व्याख्या पद्धतियों को प्रस्तुत किया गया है । अश्वमेध प्रकरण में आलम्बन, संज्ञपन, विरासन, अवदान आदि शब्दों का अर्थ हिंसात्मक रूप में लिया जाता है परन्तु इनका वास्तविक अर्थ क्रमशः स्पर्श या प्राप्ति, ज्ञान, विशेष शिक्षा, मङ्गला पूर्वक दान देना है । इस प्रकार गोमेध, अश्वमेध, अजमेध, सर्वमेध, पुरुषधमे



आदि का अर्थ बलि देना नहीं है अपितु धान्यादि की विशेष आहुति देना अथवा आत्मा-परमात्मा के प्रति समर्पण, सूर्य के साथ नक्षत्रों आदि का ज्ञान, उसकी जीवन उपयोगिता तथा राष्ट्र एवं देश को शक्तिशाली बनाना है; पशु हिंसात्मक (बलि) यज्ञ सर्वथा वेद विरुद्ध है। ब्राह्मण ग्रन्थों में जो यज्ञ कहे गये हैं उनमें से अनेक में बलिदान का विधान पाया जाता है पर हमारा निज का इस बलिदान वाले यज्ञ में विश्वास नहीं। शतपथ में एक कथन है कि वनस्पतियाँ ही यज्ञ के योग्य हैं। “अग्नि ही यज्ञ है और वनस्पतियाँ ही यज्ञ के योग्य हैं” मनुष्य यज्ञ न कर सकते यदि वनस्पतियाँ न होतीं। अनेक अंशों के प्रूफ संशोधन में वेद ग्रुप के विद्यार्थी चि० ओम शंकर, पं० विजय शंकर त्रिपाठी, मनोज कुमार तथा निर्मल कुमार से पर्याप्त सहायता मिली है, जिसके लिये उन्हें शुभाशीर्वाद देना अपना कर्तव्य है।

अन्त में मैं यही कहना चाहता हूँ कि मनुष्य का कोई भी कार्य पूर्ण तथा निर्दोष नहीं होता, अतः मुझे पूर्ण आशा है कि विद्वान् पाठक प्रस्तुत कृति के प्रति सहानुभूति पूर्ण दृष्टि कोण रखते हुये मेरी त्रुटियों को सूचित करेंगे, जिससे भविष्य में उनका परिमार्जन करने के साथ साथ अपना ज्ञानवर्द्धन भी कर सकूँ।

निवेदयते विदुषां विधेयो शास्त्रि

विजयपाल शास्त्री



## विषय-सूची

| अध्याय १                                     | ब्राह्मण | पृष्ठ संख्या |
|----------------------------------------------|----------|--------------|
| १. ब्रह्मोदन पाकः                            | १        | १            |
| २. अश्वस्य बन्धन प्रौक्षणादि                 | २        | २            |
| ३. सहस्रमाहुतयः                              | ३        | ५            |
| ४. सावित्र्य इष्ट्य                          | ४        | ८            |
| ५. गाथा गानम्                                | ५        | ९            |
| ६. अश्व कर्णेजपः श्रुति होमश्च               | ६        | ११           |
| ७. औद्ग्रमण होमः                             | ७        | १३           |
| ८. अघ्वर्यु कर्तृ क जपः                      | ९        | १५           |
|                                              |          |              |
| अध्याय २                                     |          |              |
| १. आज्य सत्तुधान्य लाजा होमः                 | १        | १८           |
| २. पर्यङ्ग पशु निरुपणम्                      | २        | २०           |
| ३. उदगात्रन्वारम्भ                           | ३        | २४           |
| ४. ग्राम्य पश्वालम्भः अरण्य पशूनामुत्सर्गश्च | ४        | २५           |
| ५. पश्वेकादशिनी                              | ५        | २६           |
| ६. अश्वस्य नियोजनाञ्जनर्माण बन्धनादि         | ६        | २८           |
| ७. अश्वस्य प्रौक्षणादि                       | ७        | ३२           |
| ८. मृतस्याश्वस्य परिक्रमणादि                 | ८        | ३५           |
| ९. संवादः                                    | ९        | ३७           |
| १०. अश्वशरीरे सूचीभिः वित्तोदः               | १०       | ३९           |
| ११. परिपशव्याहुती                            | ११       | ४०           |
|                                              |          |              |
| अध्याय ३                                     |          |              |
| १. अश्वस्यावदानम्                            | १        | ४१           |
| २. वपा प्रचारः                               | २        | ४२           |
| ३. यूपैक विंशति                              | ३        | ४३           |
| ४. अश्वस्य लोहितश्च पणादि                    | ४        | ४५           |
| ५. अश्वमेघेनाप मृत्यु निराशः                 | ५        | ४७           |
| ६. अश्वस्तोमीय होमः                          | ६        | ४८           |
| ७. अश्वमेघ महिमा                             | ७        | ५०           |
| ८. अश्वमेघ प्रायश्चित्तम्                    | ८        | ५१           |



| अध्याय ४                                                              | ब्राह्मण | पृष्ठ संख्या |
|-----------------------------------------------------------------------|----------|--------------|
| १. अश्वमेधारम्भ कालादि                                                | १        | ५४           |
| २. सावित्र्य इष्टयः परिप्लवा शंसनादि च निरूप्यन्ते (१)                | २        | ५८           |
| ३.       "       "       "       " (२)                                | ३        | ६४           |
| ४. यूपकाष्ठादि                                                        | ४        | ६९           |
| अध्याय ५                                                              |          |              |
| १. सवनीयाः पशवः                                                       | १        | ५२           |
| २. संवाद                                                              | २        | ८०           |
| ३. चपाहोमः                                                            | ३        | ८५           |
| ४. प्रतृप्तु पश्वालम्भः                                               | ४        | ८८           |
| अध्याय ६                                                              |          |              |
| १. पुरुषमेघ                                                           | १        | ९४           |
| २. ब्राह्मणादीनामष्टाचत्वारिंशत्<br>संख्यकानामग्निष्टे यूपे नियोजनादि | २        | ९८           |
| अध्याय ७                                                              |          |              |
| १. सर्वमेघ                                                            | १        | १०४          |
| अध्याय ८                                                              |          |              |
| १. पितृमेघ निरूपणम् (१)                                               | १        | १०७          |
| २. पितृमेघ निरूपणम् (२)                                               | २        | ११३          |
| ३. पितृमेघ निरूपणम् (३)                                               | ३        | ११६          |
| ४. पितृमेघ निरूपणम् (४)                                               | ४        | १२०          |



ओ३म्

विश्वानि देव सवितर्दुतानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ।

## भूमिका

भारतीय वैदिक वाङ्मय धर्म के इतिहास में यज्ञों का एक विचित्र महत्वपूर्ण युग था, जिसमें आर्य लोग वेदों का नियम पूर्वक अध्ययन करके अग्न्याधान के पश्चात् दर्श पौर्णमास चातुर्मास्य, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणी, अश्वमेध, सर्वमेध, पितृमेध प्रभृति यज्ञों के अनुष्ठान द्वारा ऐहिक एवं पारलौकिक सुख एवं समृद्धि का सम्पादन करते थे ।

वैदिक व्याख्या पद्धतियों में याज्ञिक पद्धति का सर्वप्रथम स्थान रहा है । यह एक पद्धति है जिसके अनुसार सभी वेदों का सर्वाङ्गीण और क्रमबद्ध व्याख्यान हुआ है । याज्ञिक पद्धति का आश्रय लेकर ही अन्य सम्प्रदाय विदों ने अपने विचारों को प्रस्तुत किया है ।

यास्क ने अपने निरुक्त में याज्ञिकों का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है इसके अनुसार वेद यज्ञ के लिए ही प्रवृत्त है । इस तथ्य के विचार वेदाङ्ग, (ज्योतिष ७३) के कर्त्ता लगघ ने भी किया है ।

‘‘वेदा हि यज्ञार्थमभि प्रवृत्ता कालानि पूर्वा निहिताश्च यज्ञा’’

‘‘आम्नायस्य क्रियार्थंज्ञादार्धक्य मतदर्थानाम् (जैमिनीय १।२।७)

जैमिनीय ने तो डंकों की चोट से कहा है कि आम्नाय वेद का लक्ष्य क्रिया (यज्ञ) है और वेद के जिस अंश का यज्ञ से सम्बन्ध नहीं है, यह आवश्यक हैं । इतना ही नहीं अपितु यास्क ने कहीं अध्यात्म, कहीं अधिदैव, और कहीं अधियज्ञ को आश्रय करके जितने भी अर्थ उचित प्रतीत होते ही उन सबको निकालना चाहिए । ऐसा करने में कोई अपराध नहीं है वह कल्प वृक्ष के समान है जो मनुष्यों को मुँह माँगा पदार्थ प्रदान करता है । जिसने जिस दृष्टि से मन्थन किया, वेद ने उसे खाली हाथ लौटने नहीं दिया । जिसके परिणाम स्वरूप वेदों की अनेक प्रकार की व्याख्या पद्धतियाँ मिलती हैं जिनमें प्रत्येक ने अपने अपने सिद्धान्त के अनुसार वैदिक शब्दों का भिन्न भिन्न प्रकार से व्याख्या किये हैं । मुख्य व्याख्या पद्धतियाँ ये हैं— याज्ञिक, सामाजिक, नैरुक्तिक, प्रतीकात्मक, आध्यात्मिक, आधिदैविक और प्रकृति परक । सायण एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती के वेद भाष्य याज्ञिक पद्धति के उवल्लसत उदाहरण हैं । अतः इस पद्धति के विषय में यहाँ कुछ कहना सङ्गत ही है ।



ऋग्वेद के हमें आज दो ब्राह्मण उपलब्ध उपलब्ध है— (१) ऐतरेय (२) कौषीतकी । ऐतरेय में ४० अध्याय हैं जिन्हें ८ पञ्चकों में विभक्त किया गया है । इसके लेखक या संग्रहकर्ता महीदास ऐतरेय हैं । इस ब्राह्मण ग्रन्थ में सोमयज्ञ का विस्तार से वर्णन किया है । कौषीतकी ऐतरेय के प्रारम्भिक ५ अध्यायों का ही परिवर्धित रूप ऐसा जान पड़ता है । इसमें विविध यज्ञों तथा सोम यज्ञ का विस्तार से वर्णन है—अन्नयज्ञ, अग्निहोत्र, पौर्णमास्येष्टि आदि ।

यजुर्वेद के दो ब्राह्मण मिलते हैं । तैत्तिरीय तथा शतपथ ब्राह्मण । तैत्तिरीय एक महत्वपूर्ण प्राचीन रचना है इसमें अन्याधान, वाजपेय, सोम, नक्षत्रेष्टि, राजसूय, अग्निहोत्र सौत्रामणि आदि यज्ञों का पूर्ण वर्णन मिलता है । यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण साहित्य में एक महत्वपूर्ण रचना है । इस ब्राह्मण में सो अध्याय हैं । इसके प्रारम्भिक नव काण्डों में यजुर्वेदीय वाजसनेयी संहिता के प्रथम १८ अध्यायों की व्याख्या है इसमें अग्नि चयन, उपनयन, स्वाध्याय, अन्त्येष्टि, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध आदि यज्ञों का विशद वर्णन किया गया है । वाजसनेयी संहिता की भाँति ही इस ब्राह्मण की भी दो शाखाएँ हैं एक काण्व, दूसरा माध्यन्दिनीय । इसी काण्ड के अन्त में उस महत्वपूर्ण वृहदारण्यक उपनिषद् को प्राप्त करते हैं जो दार्शनिक तत्त्वज्ञान के लिये आवश्यक है ।

सामवेद के चार ब्राह्मण मिलते हैं, इनमें ताण्डव ब्राह्मण अधिक महत्वपूर्ण का है इसमें २५ अध्याय हैं अतः यह पंचविश ब्राह्मण भी कहलाता है । एक दिन से लेकर वर्षों चलने वाले यज्ञों का विशद विवेचन है तथा सोमयज्ञ की विस्तार से चर्चा है । दूसरा ब्राह्मण षड्विंश है । परन्तु रचना की दृष्टि से पूर्णतः स्वतन्त्र है फिर भी ताण्डव ब्राह्मण का अङ्गभूत ही है । इसमें इन्द्रजाल, अलौकिक घटनाओं के उल्लेख भी मिलते हैं । तीसरा जैमिनीय ब्राह्मण है जैमिनीय, शतपथ की भाँति विपुलकाय योगानुष्ठानों के रहस्य दर्शनहेतु महत्वपूर्ण हैं, चौथा साम ब्राह्मण है इसमें दैवत, उपनिषद्, वंश, संहितोपनिषद् ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है ।

अथर्ववेद का एक मात्र ब्राह्मण “गोपथ” है । इसके दो भाग हैं पूर्व एवं उत्तर गोपथ । प्रथम में ५ अध्याय, द्वितीय में ६ अध्याय हैं । रचना की दृष्टि से ब्राह्मण साहित्य में यह अर्वाचीन रचना माना जा सकता है विषय वस्तु की दृष्टि से पूर्वादि मौलिक है किन्तु शेष भाग पर मौलिक है किन्तु शेष भाग पर शतपथ की छाया अङ्कित है ।

भारत की विपुल काव्यमयी वैदिक संहिताओं के पश्चात् एक विशिष्ट प्रकार के ब्रह्म सम्बन्धी विषयों का प्रादुर्भाव हुआ जो कि यज्ञ प्रतिपादक के रूप में (कर्म-काण्ड विषयक) प्रतिष्ठित हुआ ।



( ३ )

**शुक्ल यजुर्वेदीय ब्राह्मण—माध्यन्दिन ब्राह्मण**

जैसा नाम से प्रकट है, शतपथ ब्राह्मण में अध्यायों की संख्या एक सौ है। गणरत्न महोदय में ऐसा ही अभिमत है—

“शतं पन्थानो यत्र शतपथः तत्तुल्यः शतपथः ।”

शतपथ ब्राह्मण का दूसरा नाम वाजसनेय ब्राह्मण भी है। इसका निर्देश गणपाठ में मिलता है। वैवर के मतानुसार शतपथ ब्राह्मण में १०० अध्याय अथवा ६८ प्रपाठक, ४३८ ब्राह्मण और ७६२४ कण्डिकायें हैं। एगलिङ्ग का मत है कि कुछ काण्ड नवीन हैं। प्रथम १२वाँ काण्ड मध्यम कहाता है। इससे प्रतीत होता है कि १०-१४ काण्ड अथवा कदाचित् ११-१३ काण्ड ग्रन्थ रूप में कभी प्रथक् विद्यमान थे। इनके अतिरिक्त पाणिनि ४।२।६० पर पातञ्जलि महाभाष्य में एक कारिका है—अनुसूलक्ष्यलक्षणो सर्वसादे द्विगोश्च लः।

इकन्पदोत्तरपदाच्छतषष्टे षिकन्पथः ॥

इसमें शतपथ और षष्टिपद का कथन मिलता है यह आश्चर्य की बात है कि इस शतपथ के प्रथम नौ काण्डों में ६० ही अध्याय हैं। वैवर ने सुझाया था कि सम्भवतः प्रथम नौ काण्ड ही कभी शष्टि पथ माने जाते थे।

कालेण्ड का मत है कि—माध्यन्दिन शतपथ के प्रथम पांच काण्ड, काण्व के प्रथम सात काण्डों से मिलते हैं इन काण्डीय सात काण्डों में ४० अध्याय हैं। अतः शेष वाजसनेय ब्राह्मण ६० अध्याय का ही होगा। यदि यह सत्य हो तो हमें मानना पड़ेगा कि पातञ्जलि के काल में काण्व ब्राह्मण के १०० अध्याय थे, १०४ नहीं। पर षष्टिपथ शब्द का यह व्याख्यान कल्पना मात्र है। शतपथ का परिमाण महाभारतनुसार—महाभारत शान्तिपर्व में कहा है—

शतः शतपथं कृत्स्नं सरहस्यं ससंग्रहम् ।

चक्रे सपरिशेषं च हर्षेण परमेण ह ॥

सूर्यस्य चानुभावेन प्रवृत्तोऽहं नराधिपः

कतुं शतपथं चेदमपूर्वं च कृतं मया ।

अर्थात् याज्ञवल्क्य ने परिशेष संग्रह और रहस्य युक्त सम्पूर्ण शतपथ बनाया और यह शतपथ अपूर्व बनाया गया है। सम्भवतः याज्ञवल्क्य ने शतपथ का प्रवचन अपनी वृद्धावस्था में किया था।

वस्तुतः शतपथ ब्राह्मण एक घना घोर जंगल है। इसमें पार होना बड़ा कठिन ही नहीं दुसाध्य भी है। जो जितना ही इसमें बुद्धि पूर्वक भटकने की शक्ति रखेगा, उतना ही ज्ञानराशि के खोजने में सफल होगा। जंगल तो यह घोर भी है, घना भी है और कण्टकाकीर्ण भी है। ज्ञान विज्ञान के सुस्वादु फलों से लदा हुआ



है। वर्तमान में उसकी प्रक्रिया लुप्त सी है अतः वह दुःसाध्य मालूम पड़ता है। मैं समझता हूँ कि इस ग्रन्थ को पढ़कर इस महा घने घोर जंगल में बैठने की प्रवृत्ति तो उत्पन्न हो ही जावेगी।

शतपथ-ब्राह्मण क्या है ? ब्राह्मण का अर्थ वस्तुतः देखा जावे तो शतपथ और ब्राह्मण दोनों ही शब्द एक समस्या है। शतपथ नाम इस ब्राह्मण का क्यों पड़ा ? यह ज्ञात करना कठिन हो गया है क्योंकि इस सम्बन्ध में अन्य ग्रन्थ उस काल के सम्बन्ध नहीं हैं। फिर भी शतपथ ब्राह्मण के कलेवर-विस्तार को देखकर एवं मनन कर यह सुतराम् स्पष्ट हो जाता है कि शतपथ वस्तुतः शतपथों वाला ही है। इस ब्राह्मण के अध्ययन से निम्न बातें सामने आती हैं :—

(१) मंत्रों का अर्थ, (२) योगिक निरुक्ति जो वेद के शब्दों पर की गई है। (३) यज्ञ के रूप की समृद्धि करना और निहित क्रियाओं की वैज्ञानिकी व्याख्या करना।, (४) वेद के शब्दों का सृष्टिगत पदार्थों से सम्बन्ध स्थापित करना। (५) यज्ञ पद के व्यापक अर्थ को लेकर यज्ञों की प्रक्रिया का संगमन करना तथा वेदार्थ को उसी दृष्टि से खोलना। (६) वेद छन्द है, देवतामय है, मंत्र है, ज्ञान के आकर हैं—इन तथ्यों की पुष्टि करना।

शतपथ ब्राह्मण में ये सभी वस्तुयें घटती हैं। ऋग्वेद के १०वें मण्डल के १३०वें सूक्त में भाववृत्त का वर्णन है। उससे पूर्व नासदीय सूक्त १२९वां सूक्त है। इसमें भी भाववृत्त का ही वर्णन है। इन सूक्तों में दर्शन और विज्ञान की प्रक्रियायें पाई जाती हैं। इस १३०वें सूक्त के एक मंत्र में संसार को यज्ञ के रूप में वर्णन करके उसे अनेक तन्तुओं वाला बतलाया गया है और इस यज्ञ को एक शत देव-कर्मों से विस्तारित कहा गया है। अतः यज्ञ का वर्णन करने वाले शतपथ ब्राह्मण का यदि शतपथ नाम है तो अत्यन्त सार्थकता और महत्ता का द्योतक है।

ब्राह्मण वेद के आख्यान हैं। शतपथ तो इसका परम प्रमाण है। इसमें यजुर्वेद के मन्त्रों की नव दश अध्यायों तक क्रमिक व्याख्या पाई जाती है। ऋषि दयानन्द ब्राह्मण पद का अर्थ ब्रह्मा आदि ऋषियों द्वारा किया गया वेद-व्याख्यान करते हैं अतः “ब्रह्मादिभिः ऋषिभिः कृतं ब्राह्मण (वेदस्य) व्याख्यानम् ब्राह्मणम् अर्थात् ब्रह्मा आदि ऋषियों द्वारा किया गया ब्रह्म अर्थात् वेद का व्याख्यान ब्राह्मण है। “मख” पद यज्ञ के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसकी निरुक्ति ब्राह्मण ग्रन्थ करते हैं कि “ख” का अर्थ छिद्र है और “म” का अर्थ प्रतिषेध है। अतः मख अर्थात् यज्ञ वह कर्म है जिसमें कोई छिद्र वा न्यूनता नहीं रहती है। इसी प्रकार शतपथ १४।१।१।१३ में मघवान् की व्याख्या करते हुए इन्द्र को वस्तुतः मखवान् अर्थात् यज्ञ वाला कहा गया है।



( ५ )

ब्राह्मण शब्द की व्युत्पत्ति :—

- (१) “ब्राह्मणोऽयमिति ब्राह्मणः”
- (२) “ब्रह्म वै मन्त्रः”
- (३) “ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यान ग्रन्थः ।”
- (४) “नैरुक्त्यं यस्य मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्”

शतपथ १।६।३।२८ में यह व्याख्यान मिलता है। यज्ञ ने कहा कि मैं नग्नता से डरता हूँ। फिर तेरी अनग्नता क्या है? अर्थात् मुझे चारों तरफ से घेरना चाहिए। इसलिए चारों तरफ से इसे अग्नि से घेरा जाता है। यज्ञ ने कहा कि मैं तृष्णा से डरता हूँ। फिर किस प्रकार की तृप्ति तुम्हारी होगी—अर्थात् विद्वानों की तृप्ति से मेरी तृप्ति होगी अतः यज्ञ में विद्वान् की तृप्ति से यज्ञ की तृप्ति होती है। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण अनेक प्रकार की व्याख्याओं से भरा पड़ा है। सबको पढ़ने और विचार करने पर विविध प्रकार का ज्ञान उद्भासित होने लगता है। ब्राह्मण ग्रन्थ यह मानते हैं कि वेद छन्द और मन्त्र से युक्त हैं। छन्दों से ही सारा भुवन परिवेष्टित है। मन्त्र ज्ञान की राशि हैं जो विचार और यज्ञ के उन्नायक हैं। वेद शब्दों से सृष्टि के पदार्थों का सम्बन्ध है। सृष्टि की प्रक्रिया यज्ञ की प्रक्रिया से अनुस्यूत है, अतः इसकी व्याख्या ही जगत्, जीव और भगवान् की व्याख्या है। इस समन्वय को ब्राह्मण स्थापित करते हैं। शतपथ में सर्वत्र इसका उदात्त रूप देखा जाता है। यह ब्राह्मण बहुत ही उपयोगी है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेद भाष्य में मन्त्रों के भाष्य के अन्त में लिखा है “अयं मन्त्रः शतपथे व्याख्यातः” अर्थात् इस मन्त्र की व्याख्या शतपथ में की गई है। फिर इसका विज्ञान—समन्वित भाष्य क्यों नहीं? जब यह ग्रन्थ इतना महत्वपूर्ण है तो इसका वैज्ञानिक भाष्य क्यों नहीं किया जाता ऐसा लोग प्रश्न करते हैं। प्रस्तुत प्रसंग में दो भाष्यों का वर्णन किया ही जा चुका है। इस प्रकार शतपथ ने मुझे वेद तक पहुँचाया और फिर वेद ने शतपथ के रहस्य खोले यह निश्चय है कि महाभारत में जो पशुयाग के विषय में लिखा है कि :—

वृत्तैः प्रकल्पितं चक्रं नैतद्वेदेषु कल्पितम् “(शान्तिपर्यं २६४ अ०)” यद्यपि “मैं शतपथ के तत्त्व को पा गया हूँ और इसके विषय में कुछ जानना शेष नहीं” ऐसा कहने का दुस्साहस नहीं कर सकता है जिसे कभी विद्वन्मण्डली में बैठने का सोभाग्य न मिला हो, किन्तु इतना तो अवश्य कह सकता हूँ कि मैंने शतपथ के विषय में अब तक जो कुछ जाना है वह आगे आने वाले भाष्यकारों के लिए मार्गदर्शक होगा तथा अनेक ग्रन्थ-ग्रन्थियों को सुलझाने में सहायक होगा।

शतपथ ब्राह्मण का काल याज्ञिक विधि-विधान के पूर्ण विकास का है। शतपथ ब्राह्मण के वर्ण्य-विषयों के विस्तार, विचार परस्पर तथा विवरण के कारण यह ब्राह्मण ब्राह्मण ग्रन्थों में मूर्धन्य स्वीकार किया जा सकता है। यह प्राचीनतम



ब्राह्मणों में से एक ब्राह्मण है। याज्ञिक विधि-विधानों का इस ब्राह्मण में पूर्ण प्रकर्ष प्राप्त होता है एवं यज्ञ के आध्यात्मिक रहस्य का पर्यालोचन करने के कारण भी इसका एक महत्वपूर्ण स्थान है। आख्यान साहित्य की दृष्टि से भी यह ब्राह्मण महत्वपूर्ण स्थान रखता है। प्राचीन आख्यानों में मनु की कथा बड़ी मार्मिक तथा सरस रूप से निबद्ध है। जहाँ प्रलयङ्कर बाढ़ के आने पर इसी अपूर्व मत्स्य ने मनु की रक्षा की थी। इस ब्राह्मण में सांख्य दर्शन के आचार्य एवं इस ग्रन्थ के विचार महर्षि याज्ञवल्क्य के हैं और उनके किसी शिष्य ने इसकी रचना की है इसमें १४ कण्ड हैं इनकी विषय सूची इस प्रकार है :—

- |                                                                                                                                                      |                               |
|------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------------------------------|
| १—प्रथम काण्ड—दशं पौर्णमास याग,                                                                                                                      |                               |
| २—द्वितीय काण्ड—अग्न्याधान, अग्निहोत्र, उपस्थान, पिण्ड पितृयज्ञ, आग्रयण, दाक्षायण, वैश्वदेव, वरुण प्रघास, साममेघ, महाहविः, त्र्यम्बक याग, शुनासीर्ष, |                               |
| ३—तृतीय काण्ड—सोमयाग                                                                                                                                 | ४—चतुर्थ काण्ड—सोमयाग         |
| ५—पंचम काण्ड—बाजपेय याग, राजसूय याग                                                                                                                  | ६—षष्ठ काण्ड—उत्सासम्भरणम्    |
| ७—सप्तम काण्ड—हस्तिघटनाम्                                                                                                                            | ८—अष्टम काण्ड—चयनविद्या       |
| ९—नवम काण्ड—संचितिनाम, शतरुद्रिय होमः राष्ट्रभृदोमः                                                                                                  |                               |
| १०—दशम काण्ड—अग्नि रहस्य                                                                                                                             | ११—एकादश काण्ड—यज्ञ रहस्य     |
| १२—द्वादश काण्ड—सौमामणि यज्ञ                                                                                                                         | १३—त्रयोदश काण्ड—अश्वमेघ यज्ञ |
| १४—चतुर्दश काण्ड—बृहदारण्यकोपनिषद् अर्थात् ब्रह्मविद्या विचार ।                                                                                      |                               |

इस प्रकार देखने से पता लगता है कि—कुरुपति जनमेजय, पाण्डव, अर्जुन तथा जनक आदि उपधिकारी राजाओं आदि का उल्लेख मिलता है। शतपथ में याज्ञवल्क्य के गुरु उद्दालक ऋषि आरुणि का व्यक्तित्व एवं पाण्डित्य आकर्षक रूप से उपन्यस्त है। अतः हम कह सकते हैं कि ऐतिहासिक तथ्यों के उद्घाटन के लिये भी इस ग्रन्थ की महत्ता अक्षुण्ण है। आर्यों के प्रसंग के इतिवृत्तात्मक ज्ञान प्रदान करने में भी यह ब्राह्मण अपना महत्वपूर्ण योगदान करता है। शतपथ ब्राह्मण के विधि-विधान एवं विविध आख्यान तत्कालीन सामाजिक जीवन के नैतिक स्तर एवं चारित्रिक विशेषताओं का पूर्ण ज्ञान प्रदान करने में सक्षम है। यही नहीं, धर्मशास्त्र एवं धर्म विज्ञान के जिज्ञासु के लिये यह ब्राह्मण अनुपम आकर ग्रन्थ है। भाषा शास्त्रीय दृष्टि से भी भाषा से विकास की गाथा का अध्ययन यहाँ किया जा सकता है। सभ्यता एवं संस्कृति के विकास की गाथा जानने के लिये भी यह ब्राह्मण ग्रन्थ रत्न परम उपादेय है। सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से वैदिक संहिता एवं परवर्तीकाल का विकास भी इस ब्राह्मण साहित्य में दर्शनीय है। जाति प्रथा का विकास इन ब्राह्मण ग्रन्थों में चरमावस्था पर दिखलाई देता है। शतपथ ब्राह्मण के



( ७ )

भौगोलिक उल्लेखों से स्पष्ट है कि उस समय पांचाल देश ब्राह्मण सभ्यता के केन्द्र बन चुके थे ।

विशेषतः—जो विद्यार्थी ऋग्वेद पढ़ लेता है, उसके लिए अन्य वेद पढ़ने सरल हो जाते हैं । वह दूसरे वेदों को अनायास ही जान लेता है इसी प्रकार जो अध्येता शतपथ ब्राह्मण को पढ़ लेता है वह याज्ञिक क्रिया का सर्वश्रेष्ठ पण्डित कहा जाता है । अन्य सब ग्रन्थों को वह स्वल्पकाल में स्वायत्त कर लेता है । इस शतपथ में वेदार्थ की कुंजी है, वैदिक विषयों का भरपूर ज्ञान है, वैदिक ऐतिह्य का प्रामाणिक कथन है ।

इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में शतपथ ब्राह्मण का महत्वपूर्ण एवं उत्कृष्ट स्थान है ।

विजयपाल शास्त्री



( 0 )





ओ३म्

## शतपथ ब्राह्मणम्

(अश्वमेघ प्रकरणम्)

प्रथमोऽध्यायः प्रारभ्यते

## ब्राह्मण १

ब्रह्मोदन पाकः

ब्रह्मोदनम्पचति । रेतऽएव तद्धत्ते यदाज्यमुच्छिष्यते तेन रशनाम्-  
अभ्याज्यादत्ते तेजो वाऽआज्यम्प्राजापत्योऽश्वः प्रजापतिमेव तेजसा  
समर्द्धयत्यपूतो वाऽएषोऽमेध्यो यदश्वः ॥१॥

अभ्वर्युं ब्रह्मोदन को पकाता है । इस प्रकार वह वीर्य को धारण करता है ।  
अर्थात् अश्वमेघ यज्ञ में ब्रह्मोदन वीर्य का कार्य करता है । जो धी वच रहे उससे  
रस्सी को चुपड़ता है और लेता है । धी तेज है । अश्व प्रजापति का है । प्रजापति  
को तेज से सम्पन्न करता है । यह घोड़ा जो है वह यज्ञ के लिये अपवित्र और  
अमेध्य है ।

दर्भमयी रशना भवति । पवित्रं वै दर्भाः । पुनात्येवैनम् । पूतमेवैनं  
मेध्यम् आलभते ॥२॥

रस्सी दर्भ की होती है । दर्भ पवित्र होते हैं । इस प्रकार घोड़े को पवित्र  
करता है और उसको पवित्र तथा मेध्य बनाकर उसका आलभन करता है ॥२॥

अश्वस्य वा आलब्धस्यरेत उदक्रामत् । तत्सुवर्णं-हिरण्यमभवत् ।  
यत्सुवर्णं हिरण्यं ददाति । अश्वमेव रेतसा समर्द्धयति ॥३॥

जब अश्व का आलभन हो गया हो तो उसका वीर्य उससे चला गया और  
सोना बन गया । अतः जब सोना दक्षिणा में देता है तो मानों घोड़े को वीर्य से  
सम्पन्न करता है ॥३॥

प्रजापति यज्ञमसृजन् । तस्य महिमाऽयाक्रमत् । समहर्त्विजः  
प्राविशत् । तं महर्त्विग्भिरन्वैच्छत् । तं महर्त्विग्भिरन्व विन्दत् । यन्म-  
हर्त्विजो ब्रह्मोदनं प्राश्नन्ति । महिमानमेव तद्यज्ञस्य यजमानोऽवरुन्धे ।



ब्रह्मोदने सुवर्णं हिरण्यं ददाति । रेतो वा ओदनः । रेतो हिरण्यम् । रेत-  
सैवास्मिस्तद्रेतो ददाति । शतमानं भवति । शतायुर्वै पुरुषः शतेन्द्रियः ।  
आयुरेवेन्द्रियं वीर्यमात्मन् घत्ते । चतुष्टयीरपो वसतीवरी मध्यमायां ह्ये  
गृह्णाति । ता दिग्भ्यः समाहृता भवन्ति । दिक्षु वा अन्नम् । अन्नमापः ।  
अन्नेनैवात्मा अन्नमवरुन्धे ॥४॥

प्रजापति ने यज्ञ किया । उसकी महिमा उससे चली गयी और महा ऋत्विजों  
में घुस गई । इन महाऋत्विजों के साथ वह तलाश करता फिरा । महाऋत्विजों के  
साथ उसने उसको पाया । जब महाऋत्विज लोग ब्रह्मोदन खाते हैं तो यजमान  
यज्ञ की महिमा को उपलब्ध करता है । ब्रह्मोदन के साथ स्वर्ण की दक्षिणा भी  
देता है, क्योंकि ओदन भी वीर्य है और स्वर्ण भी वीर्य है । वीर्य के द्वारा घोड़े में  
वीर्य स्थापित करता है । वह सोना सौ मान का होता है, क्योंकि मनुष्य की आयु  
सौ वर्ष और सौ पराक्रम की होती है । इस प्रकार अपने में पराक्रम, वीर्य और आयु  
को धारण करता है । मध्याह्न में चार प्रकार के वसती वरी जलों को इकट्ठा  
करता है । ये चारों दिशाओं से लाये जाते हैं । क्योंकि अन्न दिशाओं में है और  
जल अन्न है । इस प्रकार अन्न के द्वारा उसकी प्राप्ति कराता है ॥४॥

## ब्राह्मण २

### अश्वस्य बन्धन प्रोक्षणादि

व्यूद्धमु वा एतद्यज्ञस्य । यद यजुष्केण क्रियते । “इमामगृभणन् रशनामृतस्य”  
इत्यश्वामिधानमादत्ते । यजुष्कृत्यै, यज्ञस्य समृद्धयै । द्वादशारत्निर्भवति ।  
द्वादश मासाः संवत्सरः । संवत्सरमेव यज्ञमाप्नोति ॥१॥

बिना शत्रु के जो यज्ञ किया जाता है वह सफल नहीं होता । यज्ञ की  
सफलता के हेतु यजु सम्पन्न करने के लिए वह नीचे के मन्त्र से (अश्व + अभिधानी)  
घोड़े की रस्सी को लेता है—

इमाम गृभणन् रशनामृतस्य

यजु० २२/२

“ऋतु की इस रस्सी को मैंने पकड़ा.....!” यह बारह हाथ की होती  
है । संवत्सर में बारह में बारह मास होते हैं । इस प्रकार संवत्सर रूपी यज्ञ की  
प्राप्ति करता है ॥१॥



( ३ )

तदाहु—द्वादशारत्नी रशना कार्यात्रयोदशारत्नीरिति । ऋषभो वा एष ऋतूनां यत्संवत्सरः । तस्य त्रयोदशो मासो विष्टमम् ऋषभ एष यज्ञानां यदश्वमेघः । यथा व ऋषभस्यविष्टयम् । एवमेतस्य विष्टयम् । त्रयोदशमरत्निं रशनानामुपादध्यात् । तद्यथा ऋषभस्य विष्टयं संस्क्रियते । तादृक् तत् ॥२॥

इस प्रकार शंका करते हैं कि बारह हाथ की या १३ हाथ की । संवत्सर में ऋषभ या सांड है, तेरहवाँ महीना उसका कुव्वड़ है, अश्वमेघ यज्ञों में ऋषभ या सांड है । यह जो रस्सी का तेरहवाँ हाथ है वह इस ऋषभ का कुव्वड़ है । यदि १३ हाथ की रस्सी होगी, तो ऐसा ही होगा, जैसे इस सांड का कुव्वड़ ॥२॥

(द) अभिधा असि इति । तस्मादश्वमेधयाजी सर्वा दिशोऽभिजयति । “भुवनमसि” इति भुवनं तज्जयति । यन्ताऽसि घर्ता इति । यन्तारमेवैनंधर्तारं करोति । “स त्वमग्निं वैश्वानरम्” इति । अग्निमेवैनं वैश्वानरं गमयति । सप्रथसं गच्छ” इति । प्रजयैवैनं पशुभिः प्रथपति । “स्वाहाकृत” इति । वषट्कार एवास्यैषः । “स्वगा त्वा देवेभ्यः” इति । देवेभ्य एवैनं स्वगा करोति “प्रजापतये” इति । प्राजापत्योऽश्वः । स्वयैवैनं देवतया समर्द्धयति ॥३॥

इस मंत्र से रस्सी को घोड़े की ग्रीवा में डालता है ।

“अभिधासि भुवनमसि यन्तासिघर्ता” सत्वमग्निं वैश्वानरं सप्रथसंस्वाहाकृतः (यजु । २२-३)

तू अभिधा या घेरने वाली है अतः अश्वमेघ करने वाला सब दिशाओं को जीत लेता है । तू भुवन है, इस संसार को जीतता है । तू शासक और धारक है । इससे उसको शासक और धारक बनाता है । तू अग्नि वैश्वानर के पास जा । इससे वह उसको अग्नि वैश्वानर के पास भेजता है । “स प्रथसं गच्छ” इससे उसको प्रजा और पशुओं तक विस्तार करता है ।

ईश्वरो वा एष आर्तीमार्तीः । यो ब्रह्मणे देवेभ्योऽप्रति प्रौच्याश्वं वध्नाति । ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यःप्रजापतये तेन राध्यासम्” । इति ब्रह्माणमामंत्रयते । ब्रह्मण एवैनं प्रतिमोच्यवध्नाति । नार्तिमाच्छति । “तं वधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि” इति ब्रह्मा प्रसौति । स्वयैवैनं देवतया समर्द्धयति । अथ प्रोक्षति । असावेव बन्धुः ॥४॥

जो घोड़े को ब्रह्मा या देवताओं को कहे बिना बाँधता है, वह दुःख उठाता है अतः वह ब्रह्मा को सम्बोधित करता है कि हे ब्रह्मन् मैं अश्व को देवताओं के लिये



प्रजापति के लिये बाँधूंगा । मुझे समृद्धि हो । ब्रह्मा को आमन्त्रण करने के पश्चात् घोड़े को बाँधता है और कोई दुःख नहीं उठाता । ब्रह्मा कहता है, इसको देवताओं के निमित्त, प्रजापति के लिए बाँधों और इस प्रकार अश्व को उसके ही देवता को अर्पण करता है । अब जल की छीटें देता है । यह वषट्कार है । इसका आशय तो वही है जो पहले कह दिया गया है ॥४॥

स प्रोक्षति । “प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि”—इति प्रजापतिर्वै देवानां वीर्यवत्तमः । वीर्यमेवास्मिन् दधाति । तस्मादश्वः पशूनां वीर्यवत्तमः ॥५॥

वह इस मन्त्र से छीटें देता है :—प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि यजु २२/१ प्रजापति देवों में सब से प्रबल है, ततः प्रजापति को अर्पण करके वह इसको प्रबल बनाता है अतः पशुओं में घोड़ा सबसे प्रबल है ॥५॥

“इन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि” इति । इन्द्राग्नी वैदेवानां यशस्वितमौ । ओज एवास्मिन् दधाति । तस्मादश्वः पशूनां वीर्यवत्तमः ॥६॥

“इन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि”—इन्द्र और अग्नि देवों में सबसे ओज वाले हैं । इस समय ओज स्थापित करता है, अतः घोड़ा सब पशुओं में ओज वाला है ॥६॥

“वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि” इति । वायुर्वै देवानामाशिष्ठः । जवमेवास्मिन् दधाति । तस्मादश्वः पशूनामाशिष्ठः ॥७॥

वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि”—वायु देवों में सब से तेजवान है उसमें तेजी स्थापित करता है । अतः पशुओं में घोड़ा सब से तेज है ॥७॥

“विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य जुष्टं प्रोक्षामि” इति । विश्वे वै देवा देवानां यशस्वितमाः । यश एवास्मिन् दधाति । तस्मादश्वः पशूनां यशस्वितमः । “सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि इति ॥८॥

“विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य जुष्टं प्रोक्षामि”—विश्वे देवा देवताओं में सबसे यशस्वी हैं । इसमें यश स्थापित करता है । घोड़ा पशुओं में सबसे यशस्वी घोड़ा है “सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि” इससे वह सब देवताओं के लिये घोड़े को अर्पित करता है ।

तदाहुः—यत्प्राजायत्योऽवः अथ कथाऽप्यन्याभ्यो देवताभ्यः प्रोक्षति इति । सर्वा वै देवता अश्वमेघेऽन्वायत्ताः । यदाहुः । “सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो



( ५ )

जुष्टं प्रोक्षामि" इति । सर्वा एवास्मिन् देवता अन्वायातयति । तस्मादश्व-  
मेधे सर्वा देवता अन्वायत्ताः । पाप्मा वा एतं भ्रातृव्य ईप्सति योऽश्वमेधेन  
यजते । वज्रोऽश्वः । "परोमर्तः परःश्वा" इति श्वानं चतुरक्षं हत्वा  
अधस्यदमश्वस्योप प्लावयति । वज्रेणैवैनमव क्रामति । नैनं पाप्मा  
भ्रातृव्य आप्नोति ॥९॥

इस पर शंका करते हैं कि घोड़ा तो प्रजापति का है, फिर अन्य देवताओं  
के लिये छीटें क्यों दिये जाते हैं ? वस्तुतः अश्वमेध में सब देवता सम्बद्ध हैं । सब  
देवताओं के लिए छीटें देकर सब देवताओं को सम्बद्ध कर लेता है । अतः अश्वमेध  
में सब देवता सम्बद्ध हैं । जो अश्वमेध यज्ञ करता है उसका दुष्ट शत्रु उसको परास्त  
करना चाहता है । घोड़ा वज्र है, चार आँख वाले (चार आँखों का कुत्ता वह है  
जो दुमुहा होता है, या जिसकी आँखों के पास चिन्ह होते हैं कुत्ते को मार कर  
"कुत्ता मर गया" कह कर घोड़े के पैर के नीचे बहाता है । इस प्रकार वज्र से उसको  
कुचल देता है । अतः दुष्ट शत्रु उसको पकड़ नहीं सकता । ब्रह्मणम् ॥२ ९॥

## ब्राह्मण ३

### सहस्रयाहुतयः

यथा वै हविषोऽहुतस्यस्कन्देत् । एवमेतत्पशोः स्कन्दति । यन्नित्त  
मनालब्धमुत्सृजन्ति । यत् स्तोकीया जुहोति । सर्वहुतमेवैनं जुहोति,  
अस्कन्दाय । अस्कन्तं हि तत् । यद्धुतस्य स्कन्दति । सहस्रं जुहोति । सहस्र  
सम्मितो वै स्वर्गो लोकः । स्वर्गस्य लोकस्याभिजित्यै ॥१॥

जैसे हवि में से आहुति देते समय कुछ नीचे गिर पड़ता है । इसी प्रकार  
जब पशु को आलभन किये बिना ही छीटा देकर छोड़ देते हैं तो इसका तात्पर्य यह  
है कि पशु में से आहुति से पूर्व कुछ नीचे गिर गया । स्तोकीय आहुतियाँ इसलिये देता  
है कि "सर्वहुत" अर्थात् पूरी वस्तु की आहुति हो सके । जिससे फँसने का प्रतिकार  
हो सके । इस प्रकार जो आहुति देते समय गिर गया वह न गिरने के बराबर हो  
गया । एक हजार आहुतियाँ देता है । स्वर्गलोक की प्राप्ति के लिए, क्योंकि स्वर्ग  
सहस्र वाला है ॥१॥

तदाहु—यन्मिता जुहुयात् । परिमितमवरुन्वीत । इत्यमिता  
जुहोति । अपरिमितस्यैवावरुद्ध्यै । उवाच ह प्रजापतिः । स्तोकीयासु  
वा अहम् अश्वमेधं संस्थापयामि । तेन संस्थितेनैवात ऊर्ध्वं चरामीति ॥२॥

इस विषय में कहते हैं कि, यदि परिमित आहुतियाँ देगा तो परिमित फल  
होगा । इसलिए अपरिमित फल की प्राप्ति के लिए, अनगिनती आहुतियाँ देता है ।



प्रजापति ने कहा, मैं स्तोकीय आहुतियों पर अश्वमेध को स्थापित करता हूँ इसे स्थापित कर उसके ऊपर मैं चढ़ूँगा ॥२॥

“अग्नये स्वाहा”—इति । अग्नय एवैनं जुहोति । “सोमाय स्वाहा—इति । सोमायैवैनं जुहोत्यपाम्मोदाय स्वाहेत्यद्भ्यः एवैनं जुहोति सवित्रे स्वाहेति सवित्रः एवैजुहोति वायवे स्वाहेति वायवः एवैनं जुहोति । विष्णवे स्वाहा—इति । विष्णव एवैनं जुहोति । “इन्द्राय स्वाहा” इति । इन्द्रायैवैनं जुहोति । “बृहस्पतये स्वाहा”—इति बृहस्पतय एवैनं जुहोति । “मित्राय स्वाहा”—इति मित्रायैवैनं जुहोति । “वरुणाय स्वाहा”—इति वरुणायैवैनं जुहोति । एतावन्तो वै सर्वे देवाः । तेभ्य एवैनं जुहोति । पराचीर्जुहोति । पराङ्ङि व स्वर्गो लोकः । स्वर्गस्य लोकस्याभिजित्ये ॥३॥

अग्नये स्वाहा से अग्नि के लिये आहुति देता है ।

सोमाय स्वाहा से सोम ” ” ।

अपामोदाय स्वाहा से जलों ” ” ।

सवित्रे स्वाहा से सविता ” ” ।

वायवे स्वाहा से वायु ” ” ।

विष्णवे स्वाहा से विष्णु ” ” ।

इन्द्राय स्वाहा से इन्द्र ” ” ।

बृहस्पतये स्वाहा से बृहस्पति ” ” ।

मित्राय स्वाहा से मित्र ” ” ।

वरुणाय स्वाहा से वरुण ” ” ।

इतने देवता हैं । इनके लिये आहुतियां देता है । स्वर्ग की प्राप्ति के लिए, क्रमशः आहुतियां देता है । क्योंकि स्वर्ग लगातार है ।

(अश्व के प्रोक्षण पर उसके शरीर से जल की बूंदें टपकती हैं ।) उन्हीं के साथ जो आहुतियां दी जाती हैं वे चोरी या आहुतियां कहलाती हैं ऊपर १० मंत्र दिये हैं जब १० आहुतियां होईं तब ११ वीं आहुति से फिर यही १० मंत्र आरम्भ होते हैं । इसी प्रकार एक सहर तक या उस समय तक जब घोड़े के शरीर से बूंदें गिरना बन्द हो क्रमशः आहुतियां दी जाती हैं ॥३॥

ईश्वरो वाऽ एष । पराङ् प्रदधोर्यः पराचीराहुतीः जुहोति पुनरावर्तऽस्मिन्मेव लोके प्रतितिष्ठत्येतां ह वाव स यज्ञस्य संस्थिति मुवाचास्कन्दा-यास्कन्नं हि तद्यद्धतस्य स्कन्दति ॥ ४ ॥

अर्थः—परन्तु जो सीधा आहुतियां देता जायेगा, वह सीधा चला जायेगा । अतः इस लोक में प्रतिष्ठा जमाने के लिए फिर लौटता है । गिरे हुये को प्रतिकार करने



के लिये । इसी को यज्ञ की पूर्णता कहा है, क्योंकि ऐसा करने से जो भाग गिरा हुआ है, वह वे गिरे हुए के तुल्य हो जाता है ॥४॥

तथा वै हविषोऽहुतस्य स्कन्देत् । एवमेतत्पशो स्कन्दति यं प्रोक्षितमना लब्धमुत्सृजन्ति यद्रूपाणि जुहोति सर्वं हुत मेवैनं जुहोत्यस्कन्दायास्कन्नं हि तद्यद्धतस्य स्कन्दति द्विङ्काराय स्वाहा द्विङ्कृताय स्वाहेत्येतानि वाऽअश्वस्म रूपाणि तान्येवावरुद्रे ॥५॥

अर्थ:—जैसे आहुति देते समय हवि में से कुछ गिर पड़ता है इसी प्रकार जब बिना आलभन के नहलाया हुआ पशु छोड़ दिया जाता है, तो मानों वह हवि में से कुछ गिर गया । “रूपो” की आहुतियाँ इसलिए दी जाती हैं कि आहुति को पूर्ण माना जा सके । गिरे हुये के प्रतिकार के लिये । वह जो गिरा हुआ भाग है, वह भाग वे गिरे हुये के तुल्य हो जाता है ।

(हिकाराय स्वाहा, हि कृताय स्वाहा—इत्यादि) इन दो मंत्रों में ४९ आहुतियाँ हैं । इनकी प्राप्ति के लिये ये अश्व के रूप हैं ॥५॥

तदाहुः । अनाहुतिर्वै रूपाणि नेता होतव्या खल्वाहरत्र वाऽअश्वमेधः संतिष्ठते यद् रूपाणि जुहोति होतव्याऽएवेति वहिः वा वाऽएतमा यतनात्करोति भ्रातृव्यमस्यै जनयति यस्मानायतनेऽन्यवाग्नेराहुती जुहोति ॥६॥

अर्थ:—इस पर कहते हैं रूप तो आहुति के योग्य नहीं हैं । इनकी आहुति नहीं देनी चाहिए । परन्तु यह भी कहते हैं कि जो रूपों को आहुति देता है वह अश्वमेध को पूर्ण करता है, इसलिये ये आहुतियाँ दी जानी चाहिये ॥६॥

सावित्र्याऽएवेष्टेः । पुरस्तादनुद्रत्य सकृदेव रूपाण्यहवनीये जुहोत्यायतनऽएवाहुतिर्जुहोति नास्यै भ्रातृव्यं जनयति यज्ञमुखे जुहोति यज्ञस्य संतत्याऽअव्यवच्छेदाय ॥७॥

सावित्री की आहुति से पहले शीघ्रातिशीघ्र एक बार रूपों को आहुति आहवनीय में देता है, इस प्रकार से आहुतियाँ स्थान में ही दी जाती हैं । उसका शत्रु भी उत्पन्न नहीं होने पाता । प्रत्येक यज्ञ के आरम्भ में आहुतियाँ देता है, जिससे यज्ञ की संतति बनी रहे, टूटे नहीं ॥७॥

तदाहुः । पद्यज्ञमुखे—यज्ञमुखे जुहुयात् पशुभिर्व्यूध्येत पापीयान्तस्यात्सकृदेव होतव्या न पापीयान्भवत्यष्टा चत्वारिंशत् जुहोत्यष्टा चत्वारिं-



शदक्षरा जगती जागताः पशवो जगत्यै वास्मै पशूनवरुद्धः ऽएकमतिरिक्तं  
जुहोति तस्मादेकः प्रजास्वर्धुः ॥८॥

इस पर कहते हैं कि यदि प्रत्येक यज्ञ के प्रारम्भ में आहुतियाँ देगा तो पशुओं से वंचित रहेगा और दरिद्र हो जायेगा । एक साथ ही आहुतियाँ होनी चाहिये । इस प्रकार न तो पशुओं से वंचित होगा और न दरिद्र । ४८ आहुतियाँ देता है । जगती में ४८ अक्षर होते हैं । पशु जगती छन्द वाले है, क्योंकि जगती भी गम् धातु से निकला है, जगती के द्वारा वह यजमान के लिये पशुओं की प्राप्ति करता है । एक अतिरिक्त आहुति देता है । उससे प्रजा में एक मनुष्य की समृद्धि होती है ॥८॥ ब्राह्मणम् ॥३॥ (१-३)

## ब्राह्मण ४

सावित्र्य इष्ट्यः

प्रजापतिरश्वमेधमसृजत । सोऽस्मात्सृष्टः पताडैत्स दिशोऽनु  
प्राविशतं देवा प्रैषमैच्छस्तमिष्टिभिरनु प्रायुज्जत तमिष्टिभिरन्वै  
च्छस्तमिष्टिभिरन्व विन्दन्यदिष्टिभिर्यजतेऽश्वमेव तमेध्यं यजमानोऽन्वि-  
च्छति ॥१॥

प्रजापति ने अश्वमेध बनाया । वह इससे उत्पन्न होकर चला गया । दिशाओं में प्रविष्ट हो गया । देवता लोग इसकी खोज में गये । इनकी इच्छा की इष्टियों द्वारा उन्होंने इसका पीछा किया । इष्टियों द्वारा इसकी खोज की । इष्टियों द्वारा इसको प्राप्त किया । जब यजमान इष्टियाँ करता है, तो ऐसे अश्व की खोज करता है जो यज्ञ के योग्य हो ॥१॥

सावित्र्यो भवन्ति । इयं वै सविता यो वाऽस्यां निलयते योऽन्य-  
त्रैत्यस्यां वाव तमनुविन्दन्ति न वाऽङ्मां कश्चन तिर्यङ्नो वोऽत्येतुमर्हति  
यत् सावित्र्यो भवन्त्वश्यस्यैवानुविर्त्यै ॥२॥

यह इष्टियाँ सविता की होती हैं । यह पृथिवी सविता है । यदि कोई इसमें छिप जाय या अन्यत्र चला जाय तो लोग उसको यही खोज करेंगे । क्योंकि चाहे कोई सीढ़ा जाय या ऊपर की जाय, पृथिवी से बाहर न जा सकेगा । ये सविता की होती है जिससे अश्व की प्राप्ति की जा सके ॥२॥



तदाहुः । प्रवाऽएतदश्वो मीयते यत्यराडेति न ह्येनं प्रत्या वर्त-  
यन्तीति यत्सायं घृतीर्जुहोति क्षेमो वैः घृतः क्षेमो रात्रिः क्षेमेणैवैनुं दाधार  
तस्मात्सायं मनुष्याश्च पशवश्च क्षेम्या भवन्त्येष यत्प्रातरिष्टिभिर्यजतऽ  
इच्छत्येवैनं तत्तस्माद्दिवा नष्टेषऽएति यद्वेव सायंघृतीर्जुहोति प्रातरिष्टि  
भिर्यजते योग क्षेममेव तद्यजमानः कल्पयते तस्माद्यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते  
क्लृप्तः प्रजानां योग क्षेमो भवति ॥३॥

इस विषय में कहते हैं कि जब घोड़ा सीधा जाता है तो लुप्त हो जाता है,  
क्योंकि वे उसको लौटाते नहीं । सायंकाल की जो घृति आहुति देता है तो घृति क्षेम  
है, क्षेम रात्रि है । रात्रि से ही इसकी स्थापना करता है, क्योंकि सायंकाल को ही  
पशु और मनुष्य विश्राम लेते हैं । जब प्रातःकाल की इष्टियाँ करता है तो उस घोड़े  
का अन्वेषण करता है क्योंकि जो कुछ खो जाता है उसे प्रातःकाल हो ढूँढ़ते हैं,  
यह जो शाम की घृति की आहुतियाँ देता है और प्रातःकाल की इष्टियाँ करता है,  
मानो यजमान का योगक्षेम चाहता है । अतः जहाँ यह यज्ञ किया जाता है प्रजा का  
योग क्षेम होता है ॥३॥ ब्राह्मणम् ॥१-४॥

—(०)—

## ब्राह्मण ५

### गाथा गानम्

अथ वाऽएतस्मात् । श्री राष्ट्रं क्रामति योऽश्वमेधेन यजते यदा वै  
पुरुषः श्रियं गच्छति वीणास्मै वाद्यते ब्राह्मणो वीणागाथिनो संवत्सर  
गायतः श्रियं वाऽएतद्रूपे यद्वीणा श्रियमेवास्मिंस्तद्धतः ॥१॥

जो अश्वमेध करता है उसकी श्री तथा राष्ट्र उसके पास से । चले जाते हैं  
जब पुरुष को भी मिलती है तो इसके लिए वीणा बजाते हैं । दो ब्राह्मण वीणा  
बजाने वाले वर्षपर्यन्त गाते हैं । वीणा श्री का रूप है । वे दोनों इसमें श्री की  
की स्थापना करते हैं ॥१॥

तदाहुः । यदुभौ ब्राह्मणौ गायेतामयस्मात्क्षत्रं क्रामेद् ब्रह्मणो  
वाऽएतद्रूपं यद् ब्राह्मणो न वै ब्रह्मणि क्षत्रं रमतऽइति ॥२॥

इस पर शंका करते हैं कि यदि दोनों गाने वाले ब्राह्मण ही होंगे तो क्षत्रियत्व  
उससे चला जावेगा क्योंकि ब्राह्मण ब्रह्म का रूप है । क्षत्रियत्व च ब्राह्मणत्व में रचि  
नहीं रखता ॥२॥



यदुभौ राजन्यौ । अपास्माद् ब्रह्मवर्चसं क्रामेत्क्षत्रस्य वाऽएतद्रूपं यद्राजन्यौ न वै क्षत्रे ब्रह्मवर्चसं रमतऽइति ब्राह्मणोन्यो गायति राजन्योऽन्यो ब्रह्म वै ब्राह्मणः क्षत्रं , राजन्यस्तदस्य ब्रह्मणा च क्षत्रेण चोभयतः श्रीः परिगृहीता भवति ॥३॥

यदि दोनों क्षत्रिय होंगे तो उससे ब्रह्मवर्चस मिल कर चला जायेगा । क्योंकि क्षत्रिय क्षत्रियत्व का रूप है । क्षत्र में ब्रह्मवर्चस रुचि नहीं रखता, अतः एक गाने वाला ब्राह्मण होता है और एक क्षत्रिय, ब्राह्मण ब्रह्म का रूप और क्षत्र क्षत्र का रूप है, इस प्रकार इसकी श्री दोनों ओर से ब्राह्मणत्व एवं क्षत्रियत्व से सुरक्षित रहती है ॥३॥

तदाहुः—यदुभौ दिवा गायेताम् प्रभ्रं , शुकाऽस्माच्छ्रीः स्याद् ब्रह्मणो वाऽएतद्रूपं यदहर्ह्यदा वै राजा कामायतेऽथ ब्राह्मणं जिनाति पामीवास्तु भवति ॥४॥

यहाँ एक और प्रश्न है यदि दोनों दिन के समय गान करें तो उसकी श्री उससे चली जायेगी, क्योंकि दिन ब्रह्म का रूप है । यदि राजा चाहे तो ब्राह्मण को सत्ता सकता है, परन्तु वह पाप वाला होगा ॥४॥

यदुभौ नक्तम् । अपास्माद् ब्रह्मवर्चसं क्रामेत्क्षत्रस्य वा एतद्रूपं यद् रात्रिर्न वै क्षत्रे ब्रह्मवर्चसं रमतऽइति दिवा ब्राह्मणो गायति नक्तं राजन्यः तथो हास्य ब्रह्मणा च क्षत्रेण चोभयतः श्री परिगृहीता भवतीति ॥५॥

यदि दोनों रात्रि को गान करें, तो उससे ब्रह्मवर्चस ही चला जायेगा, चूँकि रात्रि क्षत्रियत्व का रूप है । क्षत्रिय ब्रह्मवर्चस में रुचि नहीं रखता । अतः दिन में ही ब्राह्मण गान करता है और रात्रि में क्षत्रिय । इस प्रकार ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों से इसकी श्री सुरक्षित रहती है ॥५॥

अयजतेत्यददादिति ब्राह्मणोगायतीष्टा पूर्तं वै ब्राह्मणस्येष्टा पूर्तैर्नैर्वैनं समर्धयतीत्ययुध्यतेत्यमुं , संग्राममजयदिति राजन्यो युद्धं वै राजन्यस्य वीर्यं वीर्यैर्णेवैनं , समर्धयति तिस्रोऽन्यो गाथा गायति तिस्रोऽन्यः षट् सम्पद्यन्ते षड्ऋतवः संवत्सरऽऋतुष्वेव संवत्सरे प्रतितिष्ठति ताम्यां शतं ददाति शतायुर्वै पुरुषः शतेन्द्रियऽ आयुरेवेन्द्रियं वीर्यमात्मन्धत्ते ॥६॥

“यह यज्ञ किया” “यह दान किया” ऐसा ब्राह्मण गाता हो, क्योंकि ब्राह्मण का काम “इष्ट” की पूर्ति है । इष्ट की पूर्ति से उसकी समृद्धि करता है । “उसने यह संग्राम



( ११ )

किया" "यह संग्राम जीता" यह क्षत्रिय गाता है। क्षत्रिय का पराक्रम संग्राम है। इस प्रकार पराक्रम द्वारा उसकी समृद्धि करता है और तीन मंत्र एक गान करता है और तीन मंत्र दूसरा। ये छः मंत्र हो गये, संवत्सर में छ ऋतुयें होती हैं। उन दोनों की सौ दक्षिणा में देता है, चूंकि पुरुष सौ वर्ष की आयु वाला होता है तथा सौ पराक्रम वाला है। इस प्रकार वह उसमें आयु, पराक्रम और वीर्य स्थापित करता है ॥६॥

—(०)—

## ब्राह्मण ६

अश्व कर्णेजपः—श्रुति होमश्च

(अध्वर्यु तथा यजमान घोड़े के दक्षिण कान में जपते हैं)

विभूमन्त्रा प्रभूःपित्रेति । इयं वै मातावसौ पिताऽऽभ्यामेवैनं परिददात्यश्वोऽसि ह्योऽसीति शास्त्येवैनं तत्तस्माच्छ्रष्टाः प्रजा जायन्ते-  
ऽत्योऽसि मयोऽसीत्यत्येवैनं नयति तस्मादश्वः पशूनत्येति तस्मादश्वः  
पशूनां श्रेष्ठ्यं गच्छत्यर्वाऽसि सप्तिरसि वाज्यसीति यथा यजुरेवैतद्वृषा-  
ऽसि नृमणाऽसि इति मिथुनत्वाय ययुर्नामाऽसि शिशुर्नामाऽसीत्येतद्वाऽ-  
अश्वस्य प्रियं नामधेयं प्रियेणैवैनं नाम्नाऽभिवदति तस्मादप्यामित्रौ  
संगत्य नाम्ना वेदभिवदतोऽन्योऽन्यं समेव जानाते ॥१॥

“विभूमन्त्राप्रभूः मित्रा” माता द्वारा विभूति या सन्तान वाला तथा पिता द्वारा प्रभुत्व या शक्ति वाला यह पृथ्वी माता और वह सौ पिता है। इस घोड़े को उन्हीं को भेंट करता है। “अश्वोऽसिह्योऽसि” तू मार्ग को प्राप्त करने वाला है। तू चलने वाला है ॥ इससे उसको ऐसा आदेश देता है कि प्रजा अधिक हो। “अत्योऽसि मयोऽसि” तू यत्य या निरन्तर चलने वाला सुखकर है। ऐसा कहकर उसको ले जाता है। अतः पशुओं में आगे बढ़ जाता है। अतः वह पशुओं में श्रेष्ठ है। “अर्वासिसप्तिरसि वाज्यसि” तू शत्रु का नाशक है। तू सिपाही के साथ चलता है। तू चलने वाला है। “वृणासि नृणासि असि” तू नर है और नर के से मन वाला है, मिथुनत्वं मिलाने के लिये ऐसा करता है। “तू ‘ययु’ नाम को गतिशील कहते हैं। तू शिशु नाम का अर्थात् प्रशंसनीय या दूध पीने वाला है।” ये अश्व के प्रिय नाम हैं जिनसे सम्बोधित करता है। अतः यदि दो पुरुष अमित्र भी हों और परस्पर एक दूसरे का नाम लेकर पुकारें तो आपस में प्रेम करने लगते हैं ॥१॥

आदित्यानां पत्वाऽन्विहीति । आदित्यानेन गमयति देवाऽआशा-  
पालाऽएतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितं रक्षतेति अतं वै तल्प्यां राजपुत्राऽ



आंशापालास्तेभ्य ऽएवैनं परिददातीह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः  
 स्वाहेति संवत्सरमाऽएवैनं परिददातीह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह  
 स्वधृतिः श्वाहेति संवत्सर माहुतीर्जुहोति षोडश नवतीरेतावाऽअश्वश्व  
 बन्धनं तामिरेवैनं बध्नाति तस्मादश्वः प्रमुक्तो बन्धनमागच्छति षोडश  
 नवतीरेता वाऽअश्वश्व बन्धनं तामिरेवैनं बध्नाति तस्मादश्वः प्रमुक्तो  
 बन्धनं जहाति ॥२॥

“आदित्यानां पत्वान्विह” यजु० २२।१९ “आदित्यों” के मार्ग से जा “इस प्रकार उसको आदित्यों के पास भेजता है, हे दिशाओं के पालने वाले देवो ! इस मेघ के लिये स्नान कराये हुये अश्व की रक्षा करो । दिशाओं के पालने वाले सौ विवाहित स्त्री-पुरुष की सन्तान राजपुत्र होते हैं । उन्हीं के अर्पण इसको करता है । यहाँ सुख है । यहाँ आनन्द मनावे, यहाँ सुरक्षित स्थान है । यहाँ इसी का सुरक्षित स्थान है । साल भर तक ४—४ आहुतियाँ देता है । ये  $९० \times १६ = १४४० (३६ + ४)$  हो जाती है । घोड़े की रस्सी में इतनी ही कड़ियाँ होती हैं उन्हीं से इसको बांधता है । जब घोड़ा छोड़ा जाता है तो इसी बन्धन में आता है । वे १४४० होती है । इन्हीं से यह अश्व को बांधता है । अतः छोड़ा हुआ घोड़ा अपने बन्धन को नहीं छोड़ता ॥२॥

राष्ट्रं वाऽअश्वमेघः । राष्ट्रं ऽएते व्यायच्छन्ति येऽश्वं रक्षन्ति तेषां  
 यऽउदृचं गच्छन्ति राष्ट्रं णैव ते राष्ट्रं भवन्तपथ ये नोदृचं गच्छन्ति  
 राष्ट्रात्ते व्यवच्छिद्यन्ते तस्माद्राष्ट्र्य अश्वमेघेन यजेत परावाऽएष सिच्यते  
 योऽज्वलोऽश्वमेघेन यजते । यद्यमित्राऽअश्वं विन्देरन्यज्ञोऽश्वं विच्छिद्येत  
 पापीपान्तस्य याच्छतं कवचिनो रक्षन्ति यज्ञस्य सतत्याऽग्न्य व्यवच्छेदाय न  
 पापीयान् भवऽयथान्यमानीय प्रोक्षेयुः सैव तत्र प्रायश्चित्तिः ॥३॥

अश्व मेघ राष्ट्र है । जो घोड़े की रक्षा करते हैं वे राष्ट्र की रक्षा करते हैं । जो अन्त तक पहुँचते हैं वे राष्ट्र में साक्षी होते हैं, जो अन्त तक नहीं पहुँचते वे राष्ट्र से अलग हो जाते हैं । अतः राष्ट्री को अश्वमेघ यज्ञ करना चाहिए । जो बिना शक्ति के अश्वमेघ यज्ञ करता है, वह नष्ट हो जाता है । यदि शत्रु अश्व को ले लेवे तो उसका यज्ञ भ्रष्ट हो जाय और वह दरिद्र हो जाय । सौ कवच पहने हुये योद्धा उसकी रक्षा करते हैं, जिससे यज्ञ की संतति टूट न जाय और यज्ञमान दरिद्र हो जाय । तो दूसरे घोड़े को लाकर नहलावें । यही उसका प्रायश्चित्त है ॥३॥

—(०)—

ब्राह्मणम् ॥६॥ (१-६)



( १३ )

## ब्राह्मण ७

## औदग्रमण होमः

प्रजापतिरक्रामयत । अश्वमेघेन यजेयेति सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत  
तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य सप्तधाऽत्मनो देवताऽअपाक्रामन्त्सा दीक्षाऽभवत्स  
ऽएतानि वैश्य देवान्य पश्यत्तान्यजुद्धेत्तेर्वै स दीक्षामवारुद्ध यद्वैश्वदेवानि  
जुहोति दीक्षामेव तैर्यजमानोऽवरुद्धेऽन्वहं जुहोत्यन्वहमेव दीक्षामवरुद्धे  
सप्त जुहोति सप्त वै ता देवताऽअपाक्रामंस्ताभिरेवास्मै दीक्षामवरुद्धे ॥१॥

प्रजापति ने चाहा कि मैं अश्वमेघ यज्ञ करूँ । उसने श्रम और तप किया ।  
उस थके और तपे हुये के शरीर से सात प्रकार के देवता निकल आये । उससे दीक्षा  
निकली उसने इन विश्वदेवा आहुतियों को देखा और इन आहुतियों से यज्ञ किया ।  
उन्हीं के द्वारा उसने दीक्षा को प्राप्त किया । जब यज्ञमान वैश्वदेव आहुतियाँ देता है  
तो उन्हीं के द्वारा वह दीक्षा को प्राप्त करता है । प्रतिदिन आहुतियाँ देता है प्रतिदिन  
दीक्षा को प्राप्त करता है । सात आहुतियाँ देता है । सात देवता ही तो निकले थे ।  
उन्से ही इसके लिये दीक्षा प्राप्त कराता है ॥१॥

अप वाऽएतेभ्यः प्राणाः क्रामति । वे दीक्षामति रेचयन्ति सप्ताहं  
प्रचरन्ति सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः प्राणा दीक्षा प्राणैरेवास्मै प्राणान्दीक्षा-  
मवरुद्धे त्रेधा विभज्य देवतां जुहोतिऽवृतो वै देवास्त्र्यावृतऽहमे लोका-  
ऽऽर्द्धयामेव वीर्यऽएषु लोकेषु प्रतितिष्ठति ॥२॥

जो दीक्षा से बढ़ जाते हैं, उनके प्राण निकल जाते हैं । सात दिन आहुतियाँ  
दी जाती हैं । सिर में ७ प्राण हैं, दीक्षा प्राण है प्राणों ही से प्राणों को और दीक्षा  
को प्राप्त करता है । तीन भाग करके देवताओं को आहुतियों को आहुतियाँ  
देता है । क्योंकि तीन प्रकार के देव और तीन प्रकार के ये लोक हैं । इस प्रकार  
वह अपने को इन लोकों में श्री तथा तेज में स्थापित करना है ॥२॥

एक विंशतिः सम्यद्यन्ते । द्वादश मांसाः पंचर्तवस्त्रयऽइमे लोका-  
ऽअसावादित्यऽएकं विंशस्तद्दैवं क्षत्रं सा श्रीस्तदाधिपत्यं तद्ब्रह्मस्य  
विष्टपं तत्स्वाराज्यमश्नुते ॥३॥

वे २१ हो जाते हैं—१२ मास, ५ ऋतुयें, ३ लोक तथा १ आदित्य २१ हो  
गये । इससे वही दैवी क्षत्र है, वह श्री है, वह आधिपत्य है, इससे वह प्रकाश के  
शिखर को एवं स्वराज्य को प्राप्त करता है ॥३॥



त्रिंशतमौद्ग्रभणानि जुहोति । त्रिंशदक्षरा विराड् विराड् कृत्स्न  
स्येवान्ना द्यस्यावरुद्धयै चत्वार्योद्ग्रभणानि जुहोति त्रीणि वैश्व देवानि  
सप्त सम्पद्यन्ते सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः प्राणाः दीक्षा प्राणैरेवास्मै  
प्राणान्दीक्षामवरुद्धे पूर्णाहुतिमुत्तमां जुहोति प्रत्युत्तव्यै सयुक्त्वाय ॥४॥

३० औद्ग्रमण आहुतियाँ देता है । विराट् में ३० अक्षर होते हैं विराट् का  
अर्थ है, सब अन्न । सब अन्न की प्राप्ति के लिये । प्रति दिन, औद्ग्रमण आहुतियाँ  
देता है । और ३ वैश्व देव, यह सात हुये । चूँकि सिर में सात प्राण हैं, तथा दीक्षा भी  
प्राण है । इसके लिये प्राणों द्वारा प्राणों और दीक्षा को प्राप्त करता है । शक्ति तथा  
संयोग की प्राप्ति के लिये अन्तिम पूर्ण आहुति को देता है । ब्राह्मणम् ॥७॥ (१, ७)

—(०)—

## ब्राह्मण ८

प्रजापतिरश्व मेधमसृजत । स सृष्टः प्रऽर्चमवलीनात्प्र साम नं  
वैश्वदेवान्युदयच्छन्यद्वैश्वदेवानि जुहोत्यश्वमेधस्यै वोद्यत्यै ॥१॥

अर्थ—प्रजापति ने अश्वमेध रचा अर्थात् अश्व के रस को बहाया । जब  
वह बहा, तो इसने ऋचाओं और सामों को दवा दिया उसको वैश्व देवों उभारा,  
इसलिये जब वह वैश्व देव आहुतियों को करता है तो अश्व मेध उमरता है ॥१॥

काय स्वाहा । कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहेतिः प्रजापत्यं मुख्यं  
करोति प्रजापति मुखाभिरेवैनं देवताभिरुद्यच्छति ॥२॥

अर्थ—काय स्वाहा । कस्मै स्वाहा । कतमस्मै स्वाहा । ये वैश्य देव आहुतियाँ  
देता है । अश्वमेध को प्रजापति आदि देवों के द्वारा उभारता है ॥२॥

स्वाहा ऽधिमाधीताय स्वाहा । मनः प्रजापतये स्वाहा चितं विज्ञा-  
तायेति यदेव पूर्वासां ब्राह्मणं तदत्र ॥३॥

अर्थ—स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा, मनः प्रजापतयेस्वाहा चितं विज्ञाताय स्वाहा  
जो पहले मंत्रों का रहस्य था वही अधिप्राय इनका भी है ॥३॥

अदित्यै स्वाहा । अदित्यै मह्यै स्वाहा । ऽदित्यै सुमृडीकायै स्वाहे-  
तीयंवाऽदितिरनयैवैनमुद्यच्छति ॥४॥

अर्थ—आदित्यै स्वाहा । आदित्यै मह्यै स्वाहा । आदित्यै-सुमृडीकायै  
स्वाहा । यह पृथिवी ही आदित्य है । इससे उसको उभारता है ॥४॥



सरस्वत्यै स्वाहा । सरस्वत्यै पाव कापै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै  
स्वाहेति वाग्वै सरस्वती वाचैवैनमुद्यच्छति ॥५॥

अर्थ—सरस्वत्यै स्वाहा । सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा । सरस्वत्यै बृहत्यै  
स्वाहा । वाणी सरस्वती है । उसी से उसको उभारता है ।

पूष्णे स्वाहा । पूष्णो प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहेति  
पशवो वै पूषा पशुभिरेवैनमुद्यच्छति ॥६॥

अर्थ—पूष्णे स्वाहा । पूष्णो प्रपथ्याय स्वाहा । पूष्णो नरन्धिषाय स्वाहा ।  
पशु ही पूषा है, अतः पशुओं द्वारा इसको उभारता है । ॥६॥

त्वष्ट्रे स्वाहा । त्वष्ट्रे तुरीयाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरुपाय स्वाहेति  
त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानां रूपं कृद्रूपैरेवैनमुद्यच्छति ॥७॥

अर्थ—त्वष्ट्रे स्वाहा, त्वष्ट्रे तुरीयाय स्वाहा । त्वष्ट्रे पुरुरुपाय स्वाहा । त्वष्ट्रा  
ही पशुओं के जोड़ों को रूप देता है और रूपों के द्वारा उसको उभारता है ॥७॥

विष्णवे स्वाहा । विष्णावे निभूयपाय स्वाहा । विष्णावे शिपिविष्टाय  
स्वाहेति यज्ञो वै विष्णुर्पञ्चनेवैनमुद्यच्छति विश्वो देवस्य ने कुरिति पूर्णं  
हुतिमुत्तमां जुहोतीय वै पूर्णाहुति रस्यामेवान्ततः प्रतितिष्ठति ॥८॥

अर्थ—विष्णवे स्वाहा, विष्णवे निभूयपाय स्वाहा । विष्णवे शिपिविष्टाय  
स्वाहा । यज्ञ ही विष्णु है यज्ञ से ही उभारता है । विश्वो देवस्य नेतुमंतो बुरीत  
सख्यम् । विश्वो राय इपुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा । (यजु० २२।२१)

इससे अन्तिम पूर्ण आहुति देता है । यह पृथिवी ही पूर्ण आहुति है । इसी  
में अन्त को अपने आपको प्रतिष्ठित करता है ॥८॥ ब्राह्मणम् ॥८॥ (१-८)

—(०)—

## ब्राह्मण ६

अध्वर्यु कर्तृक जपः

अध्वर्यु उरवा में १३ समिधायें रखने के बाद निम्न मन्त्र को जपता है ।

आ ब्रह्मान् । ब्राह्माणो ब्रह्मवर्चसी जायतामिति ब्राह्मणऽ एव ब्रह्मवर्चसं  
दधाति तस्मात्पुरा ब्राह्माणो ब्रह्मवर्चसी जज्ञे ॥१॥

ब्राह्मणों में ब्रह्मवर्चसी उत्पन्न हों । इससे ब्राह्मणों में ब्रह्मवर्चस रखता है ।  
अतः पहिले समय में ब्राह्मण ब्रह्म वर्चसी उत्पन्न हुआ ॥ ॥



आ राष्ट्रे राजन्यः । शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतामिति राजन्यऽ एव शौर्यं महिमानं दधाति तस्मात्पुरा राजन्यः शूरऽ इषव्योऽति व्याधी महारथो जज्ञे ॥२॥

क्षत्रियों में क्षत्रिय, शूर, धनुर्धारि, अचूक निशाने वाला और बड़े रथ वाला उत्पन्न इस प्रकार क्षत्रिय में शौर्य तथा बड़प्पन को रखता है । इस कारण पहिले क्षत्रियों को शूर, धनुर्धारि, अचूक निशाने वाला, महारथी उत्पन्न किया ॥२॥

दोग्ध्री धेनुरिति । धेन्वामेव पयो दधाति तस्मात्पुरा धेनुः दोग्ध्री जज्ञे ॥३॥

दूध देने वाली गाय, गाय में दूध रखता है, अतः गौ को पहिले दूध वाली बनाया गया ॥३॥

वोढाऽनड्वान् इति । अनड्वानेन बलं दधाति तस्मात्पुरा ऽनड्वान् वोढा जज्ञे ॥४॥

ढोने वाला बैल । बैल में बल रखता है, अतः बैल को पहिले बोझा ढोने वाला बनाया ॥४॥

आशुः सप्तिरिति । अश्वऽएव जवं दधाति तस्मात्पुराऽश्वः सप्तिरिति जज्ञे ॥५॥

तेज घोड़ा । घोड़े में तेजी रखता है, अतः घोड़े को पहिले तेज चलने वाला बनाया ॥५॥

पुरन्धि योषेति । योषित्येव रूपं दधाति तस्मात् रूपिणी युवतिः प्रिया भावुका ॥६॥

सुन्दर स्त्री । स्त्री में रूप रखता है अतः स्त्री रूपिणी तथा प्यारी होती है ॥६॥

जिष्णू रथेष्ठाऽइति । राजन्यऽएव जैत्रं महिमानं दधाति तस्मात्पुरा राजन्यो जिष्णूर्जज्ञे ॥७॥

जयनशील रथी । क्षत्रिय में जयनशीलता रखता है । अतः पहले क्षत्रिय जयनशील उत्पन्न किया गया ॥७॥

सभेयो युवेति । एष वै सभेयो युवा यः प्रथम वयसी तस्मात् प्रथम वयसी स्त्रीणां प्रियो भावुकः ॥८॥

सभा के योग्य युवा । पहली अवस्था में सभा के योग्य होता है । अतः युवा लोगों को स्त्रियां अच्छा साक्षर हैं ॥८॥



आऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम् इति । यजमानस्यैव प्रजायां वीर्यं दधाति तस्मात्पुरे जानस्य वीरौ जज्ञे ॥९॥

इस यजमान के वीर उत्पन्न हों । यजमान की सन्तान में पराक्रम रखता है । अतः पहिले यज्ञ करने वालों के वीर पुत्र उत्पन्न हुआ ॥९॥

निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षत्विति । निकामे-निकाने वै तत्र पर्जन्यो वर्षति यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तामिति फलवत्यो वै तत्रौषधयः पच्यन्ते यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते योगक्षेमो नः कल्पतामिति योगक्षेमो वै तत्र कल्पते यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते तस्माद्यत्रैतेन यज्ञेन यजन्तेकलृप्तः प्रजानां योगक्षेमो भवति ॥१०॥

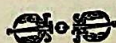
“निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु”

यह यज्ञ जहाँ होता है, वहाँ इच्छानुसार समय पर वर्षा होती है ।

“फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्” यह यज्ञ जहाँ करते हैं, वहाँ के वृक्ष फल फूल वाले होते हैं ।

“योगक्षेमो नः कल्पताम्” यह यज्ञ जहाँ किया जाता है, वहाँ क्षेम कुशल रहता है । यह यज्ञ जहाँ रचा जाता है, वहाँ की प्रजा प्रसन्न एवं सकुशल से रहती है ॥१०॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥





## अध्याय २

## ब्राह्मण १

## आज्यसक्तु धाना लाजा होमः

प्रजापति देवेभ्यो यज्ञान्व्यादिशत् । सऽआत्मन्नश्वमेघमघत् ते देवाः । प्रजापतिमब्रुवन्नेष वै यज्ञो यदश्यमेघोऽपि नोऽत्रास्तु भागऽइति तेभ्य एतानन्नहोमान कल्पयद्यदन्न होमाञ्जुहोति देवानेव तत्प्रीणाति ॥१॥

प्रजापति ने देवों के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञ दे दिये और अश्वमेघ अपने लिये रख लिया । उन दोनों ने प्रजापति से कहा कि एक यज्ञ अश्वमेघ भी है । हम लोगों का भाग इसमें भी होना चाहिए । उसने इन सब देवताओं के लिये ये अग्नि होम बनाये । जो इन "अग्निहोमों" को करता है, उनसे सब देवताओं को प्रसन्न करता है ॥१॥

आज्येन जुहोति । तेजोवाऽआज्यन्तेजसैवास्मिंस्तत्तेजो दधात्याज्येन जुहोत्येतद्वै देवानां प्रियं धाम यदाज्यं प्रियेणैवैनान्धाम्ना समर्धयति ॥२॥

धी की आहुति देता है । धी तेज है, इस प्रकार तेज के द्वारा तेज को धारण करता है । धी की आहुति देता है । धी देवताओं का परम धाम है । इस प्रकार इनको इन्हीं के प्रिय धाम द्वारा बढ़ाता है ॥२॥

सक्तुभिर्जुहोति । देवानां वाऽएतद्रूपं यत्सक्तुदेवानेव तत्प्रीणाति ॥३॥

सतुओं की आहुति देता है । सक्तु देवताओं का रूप है । इस प्रकार देवताओं को प्रसन्न करता है ॥३॥

धानानि जुहोति । अहोरात्राणां वाऽएतद्रूपं यद्धानाऽअहोरात्राण्येव तत्प्रीणाति ॥४॥

धानों की आहुति देता है । धान दिन रात्रि के रूप हैं । इस प्रकार दिन रात्रि को प्रसन्न करता है ॥४॥

लाजैर्जुहोति । नक्षत्राणां वाऽएतद्रूपं यल्लाजा नक्षत्राण्येव तत्प्रीणाति प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहेति नामग्राहं जुहोति नाम



( १९ )

ग्राहमेवैनास्तत् प्रीणात्येकस्यै स्वाहा द्वाभ्यां स्वाहा शताय स्वाहैक शताय  
स्वाहेत्यनुपूर्वं जुहोत्यनुपूर्वमेवैनास्तत्प्रीणात्येकोत्तरा जुहोत्येक वृद्धै स्वर्गो  
लोकऽएवाद्यैवैनं स्वर्गं लोकं गमयति पराचीर्जुहोति पतङ्गि व वै स्वर्गो लोकः  
स्वर्गस्य लोकस्याभिजित्यै ॥५॥

लाजा की आहुति देता है । लाजा नक्षत्रों के रूप हैं । इससे नक्षत्रों को  
प्रसन्न करता है । प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, आदि से नाम लेकर आहुतियाँ  
देता है । इस प्रकार नाम लेकर उनको प्रसन्न करता है । एकस्मै स्वाहा, द्वाभ्यां  
स्वाहा, शताय स्वाहा, एक शताय स्वाहा से क्रमपूर्वक आहुतियाँ देता है, इस प्रकार  
क्रमपूर्वक इनको प्रसन्न करता है । हर पिछली आहुति एक-एक के द्वारा ही वह  
यजमान को स्वर्ग लोक में पहुँचाता है । वह सीधी आहुति देता है । स्वर्ग लोक  
सीधा है । स्वर्ग लोक के जीतने के लिए ॥५॥

ईश्वरो वाऽणः । पराङ् प्रदवीर्यः पराचीराहुतीर्जुहोति नैक  
शतमत्येति यदेकशत मतीया दायुषः यजमानं व्यर्धयेदेक शतं जुहोति  
शतायुर्वै पुरुषऽआत्यैक शतऽआयष्येवात्मन् प्रतिष्ठति व्युष्ट्यै स्वाहा  
स्वर्गाय स्वाहेत्युत्तमेऽ आहुति जुहोति रात्रिवै व्युष्टिरहः स्वर्गोऽहो  
रात्रेऽएव तत्प्रीणाति ॥६॥

जो सीधी आहुतियाँ देता है, वह हानि उठा सकता है, अतः १०१ से आगे  
नहीं बढ़ना चाहिये । यदि १०१ से आगे बढ़ेगा तो यजमान की आयु कम कर देगा ।  
१०१ आहुतियाँ देता है पुरुष का शरीर १०० साल की आयु वाला है अपने में १०१  
वर्ष की आयु धारण करता है व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा से दो अन्तिम आहुतियाँ  
देता है । व्युष्ट रात्रि है तथा स्वर्ग दिन है । इस प्रकार इन दिन और रात्रि को  
प्रसन्न करता है ॥६॥

तदाहुः । यदुभे दिवा वा नक्तंवा जुहुयादहोरात्रे मोहयद्व्युष्ट्यै  
स्वाहेत्यनुदितऽआदित्ये जुहोति स्वर्गाय स्वाहेत् उदिते अहोरात्रयोरव्यति-  
मोहाय ॥७॥

इस पर शंका होती है कि यदि रात्रि और दिन में आहुति देगा, तो दिन  
और रात्रि में गड़बड़ी उत्पन्न कर देगा । अतः सूर्योदय से पूर्व ही व्युष्ट्यै स्वाहा से  
आहुति देता है । स्वर्गाय स्वाहा से सूर्योदय होने पर, जिससे दिन व रात्रि में गड़बड़ी  
न हो ॥७॥ ब्राह्मणम् २-१





( २० )

## ब्राह्मण २

## पर्यङ्ग पशु निरूपणम्

राजा वाऽएष यज्ञानां यदश्वमेघः । यजमानो वाऽअश्वमेघो  
यजमानो यज्ञो यदश्वे पशून्नियुनक्ति यज्ञऽएव तद्यज्ञमारभेन ॥१॥

यह अश्वमेघ यज्ञों का राजा है । यज्ञमान ही अश्वमेघ है । यज्ञमान ही यज्ञ  
है । जो अश्व में पशुओं को बांधता है, मानों यज्ञ से यज्ञ प्रारम्भ करता है ॥१॥

अश्व नूपरं गोमृगमिति । तान्मध्यमे यूयऽआलभते सेना मुखमेवा-  
स्यै तेन सं श्यति तस्माद्राज्ञः सेना मुखं भावुकम् ॥२॥

घोड़ा, वकरा और गोमृग को बीच के यूप में बांधते हैं । इससे इस यज्ञमान  
की सेना के मुख या अग्रभाग को तेज करता है कि राजा की सेना का अग्रभाग  
भयानक हो जाय ॥२॥

कृष्ण ग्रीवामाग्नेयं रराटे पुरस्तात् । पूर्वाग्निमेव तं कुरुते तस्माद्राज्ञः  
पूर्वाग्निर्भावुकः ॥३॥

काली गर्दन वाले अग्नि देवता के सामने, घोड़े के ललाट पर । इसको  
पहली वेदी बनाता है । जिससे राजा की पहली वेदी ठीक हो जाय ॥३॥

सारस्वतीं मेषीमघस्ताद्वन्वोः । स्त्रीरेव तदनुगाः कुरुते तस्मात्स्त्रियः  
पुंसोऽनु वर्तमानो भावुकाः ॥४॥

सरस्वती की भेड़ को घोड़े के जबड़ों के नीचे । इससे स्त्रियों को अनुगामिनी  
करता है । अतः स्त्रियाँ पुरुषों की अनुगामिनी हुआ करती हैं ॥४॥

आश्विनावधोरामौ बाह्वोः । मवाह्वोरेव बलंधत्ते तस्माद्राजा  
बाहुवली भावुकः ॥५॥

आश्विन के दो वकरे जिनका कि नीचे का भाग काला है, घोड़े की आगे की  
टांगों के समान, इस प्रकार भुजाओं में बल रखता है । इससे राजा बाहुबल वाला  
होता है ॥५॥

सौमापौष्णं श्यामं नाभ्याम् । प्रतिष्ठामेव तां कुरुत इयं वै पूषा स्या-  
मेव प्रतिष्ठति ॥६॥

सोम तथा पूषा के वकरों को घोड़े के नाभि से उसको प्रतिष्ठा युक्त बनाता  
है । यह पृथिवी ही पूषा है, इसी में प्रतिष्ठित करता है ॥६॥



सौर्यं यागौ श्वेतं च कृष्णं च पार्श्वयोः । कवचेऽएव ते कुरुते  
तस्माद्राजा संबद्धो वीर्यं करोति ॥७॥

सूर्य और यज्ञ के श्वेत और काले बकरे बगल में, यह कवच का काम देते हैं । अतः राजा कवच पहन कर वीरता का कार्य करता है ॥७॥

त्वाष्ट्रौ लोमश सक्थ्यौ सक्थ्योः । ऊर्वरेव बलं धत्ते तस्माद्राजोऽखली  
भावुकः ॥८॥

त्वाष्ट्रा के बालदार जाँघो वाले दो बकरों को जाँघों से । इससे जाँघों में बल रखता है । अतः राजा बलवान जाँघों वाला होता है ॥८॥

वामव्यं श्वेतं पुच्छे । उत्सेधमेव तं कुरुते तमादुत्सेधं प्रजाभयेऽभिसं  
श्रयन्तीन्द्राय स्वपस्याय वेहतं यज्ञस्य सेन्द्रतायै वैष्णवो वामनो यज्ञो वै  
विष्णुर्यज्ञः स एवान्ततः प्रतितिष्ठति ॥९॥

बायु के सफेद बकरे की पूँछ में । यह ऊँचे टीले का कार्य करता है । अतः भय के समय प्रजा टीले पर चढ़ जाती है । वांश गाय को तीव्र इन्द्र के लिये यज्ञ की तीव्रता के लिए, विष्णु के बीने बकरे को, क्योंकि यज्ञ विष्णु है, यज्ञ में ही इस प्रकार अपने को प्रतिष्ठित करता है ॥९॥

ते वाऽएते । पंचदश पर्यङ्ग्याः पशवो भवन्ति पंचदशो वै वज्रो  
वीर्यं वज्रो वज्रेणैतद्वीर्येण यजमानः पुरस्तात् पाप्मानमहते ॥१०॥

ये १५ परि-अंग पशु होते हैं, । वज्र १५ वाला है । वीर्य वज्र है, इसी वज्र, से यजमान आगे से पाप को दूर करता है ॥१०॥

पंचदश पंचदशोऽएवेतरेषु । पंचदशो वै वज्रो वीर्यं वज्रो वज्रेणै-  
वैतद् वीर्येण यजमानोऽभितः पाप्मानमपहते ॥११॥

१५—१५ प्रत्येक यूप में बाँधे जाते हैं । वज्र १५ वाला है । वज्र वीर्य है । इसी वज्र से यजमान सब ओर से पापों को दूर भगता ॥११॥

तदाहुः । अपाहैवैतैः पाप्मानं हताऽइत्य कृत्स्नं च त्वं प्रजापति  
संस्करोति न चेदं सर्वस वरुद्धे ॥१२॥

इसमें यह शंका करते हैं कि क्या इससे सब बुराइयाँ दूर हो जाती हैं ? इस समय प्रजापति पूरा तो होता नहीं । न इससे सब कुछ प्राप्त ही होता है ॥१२॥

सप्त दशैव पशून्मध्यमे यूपऽआलभेत । सप्तदशो वै प्रजापतिः प्रजापति-  
रश्वमेधोऽश्वमेधस्यैवाप्त्यै षोडश षोडशेतरेषु षोडशकलं वाऽइदं सर्वं तदिदं  
सर्वं मवरुद्धे ॥१३॥

१७ पशुओं को बीच के यूप बाँधता है । प्रजापति १७ वाला है । प्रजापति



अश्वमेध है। अश्वमेध की प्राप्ति के लिए। १६—१६ और यूपों में वाँघता है, इस संसार में १६ कलायें हैं। इससे इस सब की प्राप्ति करता है ॥१३॥

तान्कथमा प्रीणीयादित्याहुः। समिद्धोऽञ्जन्कृदरं मतीनाभितिवार्हं  
दुक्थीभिरा प्रीणीयाद् बृहदुक्थो ह वै वामदेव्योऽश्वो वा सामुद्रिरश्व  
स्याप्रीर्ददशं ताऽएतास्ताभिरेवैनमेतदाप्रीणीमऽइति वदन्तो न तथा कुर्या-  
ज्जामदग्नीभिरेवाप्रीणीयात् प्रजापतिर्वै जमदग्निः सोऽश्वमेधः स्वयैवैनं  
देवतया समर्घयति तस्माज्जामदग्नि रेवा प्रीणीयात् ॥१४॥

अब प्रश्न होता है कि इनको कैसे सन्तुष्ट किया जाय। “समिद्धो अजन् कृदरं मतीनां, आदि वार्हद् उक्थी आप्री मंत्रों का जप किया जाय। वामदेव के लड़के बृहदुक्थ या समुद्र के लड़के अश्व ने इन अश्व के आप्री मंत्रों को देखा और इन्हीं से हम सबको उसको तृप्त करते हैं। इस प्रकार वे कहते हैं। परन्तु ऐसा न करें। जामदग्न्य आप्री मंत्रों से इनको प्रसन्न करे। प्रजापति ही जमदग्नि है। यही अश्वमेध है। इस प्रकार इसको इसी के देवता से बढ़ाता है। अतः जामदग्न मंत्रों से ही इनको प्रसन्न करे ॥१४॥

तर्द्धके। एतेषां पर्यङ्ग्याणा नाना याज्यापुरो ऽनुवाक्याः कुर्वन्ति  
पिन्दामऽएतेषामवित्येतरेषां न कुर्मऽ इति न तथा कुर्यात् क्षत्रं वाऽश्वो  
विडितरे पशवः प्रति प्रतिनीं ह ते प्रत्युद्यामिनीं क्षत्राय विशं कुर्वन्त्य  
थोऽआयुषा यजमानं व्यर्घयन्ति ये तथा कुर्वन्ति तस्मात् प्राजापत्यऽएवाश्वो  
देवदेवत्याऽ इतरे क्षात्रायैव तद्विशं कृतानुकरा मनुवर्त्मानं करोत्ययोऽ  
प्रायुवैव यजमानं समर्घयति ॥१५॥

कुछ लोग इन परि अंगो के याज्य और पुरोनुवाक्यों को अलग अलग कर देते हैं। वे लोग कहते हैं कि इनके तो हमको मिल गये। जो नहीं मिलते, उनको नहीं करते। परन्तु ऐसा न करे। अश्व क्षत्रिय है अन्य पशु वैश्य हैं। जो ऐसा करते हैं वे वैश्यों को क्षत्रिय के समान अनाज्ञाकारी कर देते हैं और यजमान की आयु से वंचित कर देते हैं। अतः केवल अश्व ही प्रजापति का है और अन्य पशु अन्य देवताओं के हैं। इस प्रकार वैश्यों को क्षत्रिय का अनुगामी बनाता है और यजमान की आयु से सम्पन्न करता है ॥१५॥

हिरण्मयोऽश्वस्य शासो भवति। लोह मयाः पर्यङ्ग्याणामायसाऽ  
इतरेषां ज्योतिर्वै हिरण्यं राष्ट्रमश्वमेधो ज्योतिरेव तद्राष्ट्रे दधात्यथो



( २३ )

हिरण्यज्योतिषैव यजमानः स्वर्गं लोकमेत्यथो ऽअनूकाशमेव तं कुरुते  
स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥१६॥

घोड़े का छुरा सोने का होता है। परि अंगों का ताँवे का। अन्यो का लोहे का। सोना ज्योति है। अश्वमेघ राष्ट्र है। इस प्रकार राष्ट्र में ज्योति रखता है। इस सोने की ज्योति से यजमान स्वर्गलोक को जाता है। स्वर्ग लोक जाने के लिये यह मशाल का कार्य देता है ॥१६॥

अथो क्षत्रं वा ऽअश्वः । क्षत्रस्यैतद्रूपं यद्विरण्यं क्षत्रमेवतत्क्षत्रेण समर्धयति ॥१७॥

अश्व क्षत्र का रूप है, सोना क्षत्र का रूप है इस प्रकार क्षत्र को क्षत्र से बढ़ाता है ॥१७॥

अथ यल्लोहमयाः पर्यङ्ग्याणाम् । यथा वै राज्ञो ऽराजानो राज-  
कृतः सूत सूत ग्रामण्यः एवं वा एतेऽश्वस्य यत्पर्यङ्ग्या ऽ एवमु वा ऽएत  
द्विरण्यस्य यल्लोहं सवेनैवेनस्तद्रूपेण समर्धयति ॥१८॥

परि अंगों का ताँवे का इसलिये है कि राजाओं के साथी जैसे सूत आदि राजाओं से वे ही विशेष सम्बन्ध रखते हैं, वही सम्बन्ध परिअंगों का अश्व के साथ भी है, और वही ताँवे का सोने से है। उनके ही रूप से उनको समृद्ध करता है ॥१८॥

अथ यदायसा ऽ इतरेषाम् । विड्वा इतरे पशवो विश एतद्रूपं  
यदयो विशमेव तद्विशा समर्धयति वेतसऽइत्सूनऽउतरतोऽश्वस्यावद्यन्त्या-  
नुष्टुभो वा ऽ अश्व ऽ आनुष्टुभैषा दिक्स्वायामेवैनं तद्दिशि दधात्यथ  
यद्वैतसऽ इत्सूनेऽप्सु योनिर्वाऽअश्वोऽप्सुजा वेतसः स्वयैपैर्वैनं योन्या  
समर्धयति ॥१९॥

अन्यों का लोहे का ही क्यों ! पशु वैश्य है, लोहा वैश्यों का रूप है इस प्रकार वैश्यों के वैश्य के रूप से समृद्ध करता है। उत्तर में नरकुल की चटाई पर अश्व को काटते हैं अश्व अनुष्टुभ है और उत्तर दिशा भी अनुष्टुभ है। नरकुल की चटाई पर ही क्यों ? अश्व जलों की योनि से उत्पन्न हुआ था। नरकुल भी जल से ही उत्पन्न होता है। इस प्रकार इसको इसी की योनि से समृद्ध करता है ॥१९॥ ब्राह्मणम् (२-२)

—(०)—



## ब्राह्मण ३

## उद्गात्रन्वारम्भः

देवावाऽअश्वमेधे पवमानम् । स्वर्गं लोकं न प्राजांस्तमश्वः प्राजाना  
द्यदश्वमेधेऽश्वेन पवमानायसर्पन्ति स्वर्गस्य लोकस्य प्रज्ञात्यै प्रच्छमन्वा  
रभन्ते स्वर्गस्यैव लोकस्य समष्ट्यै न व मनुष्यः लोकमञ्जसा वेदाश्वो  
वैस्वर्गं लोकमञ्जसा वेद ॥१॥

अश्वमेध यज्ञ के समय देवताओं ने पवमान स्वर्ग लोक को न पहचाना । अश्व  
ने पहचान लिया । अतः जब अश्वमेध यज्ञ में अश्व के साथ पवमान हेतु चलते हैं तो  
स्वर्ग लोक की प्राप्ति हेतु घोड़े की की पूँछ को पकड़ लेते हैं स्वर्ग लोल तक लेजाने  
हेतु । चूँकि मनुष्य तो स्वर्ग को अच्छी प्रकार जानता नहीं तथा अश्व अच्छी प्रकार  
से जानता है ॥१॥

यदुदमातोद्गायेत् । यथा ऽक्षेत्रज्ञोऽन्येन यथा नयेत्तादृक्तदथ  
यदुद्गाता रमवरुध्याश्वमुदगीथाय वृणीते यथा क्षेत्रज्ञोऽञ्जसा नयेदेव-  
मेवैतद्यजमानमश्वः स्वर्गं लोकमञ्जसा नयति हिङ्करोति सामैव  
तद्विङ्करोत्युद्गीथ ऽएव स वडवाऽउपरुन्धन्ति सं शिञ्जते यथोपगातारऽ  
उप गायन्ति तादृक्त द्विरण्यं दक्षिणा सुवर्णदं शतमानं तस्योक्तम्  
ब्राह्मणम् ॥२॥

यदि उद्गाता उद्गीथ का गान करे तो ऐसा होगा जैसे—अक्षेत्रज्ञ किसी को  
विरुद्ध मार्ग से ले जाय यदि उद्गाता को छोड़कर अश्व को उद्गीथ के स्थान पर  
वरण किया जाय तो ऐसा होगा जैसे—क्षेत्रज्ञ या देश से अनिमिज्जपुरुष किसी को  
ठीक-ठीक मार्ग से ले जाय । इस प्रकार अश्व यजमान को स्वर्गलोक तक अच्छे मार्ग  
से ले जाता है । वह हिङ्कार करता है । अतः साम को ही हिङ्कार करता करता  
है । यही उद्गीथ है । वह घोड़ियों को वन्द कर देता है । ये चिल्लाती हैं । यह  
उपगाताओं का गान है । इसकी दक्षिणा स्वर्ण है । सौ मान स्वर्ण । इस ब्राह्मण  
का रहस्य बता दिया गया है ॥२॥

ब्राह्मणम् ॥ ( २-३ )

—( ० )—



## ब्राह्मण ४

### ग्राम्य पश्वालम्भः अरण्य पशूनामुत्सर्गश्च

प्रजापतिरकामयत । उभौ लोकावभिजयेयं देवलोको मनुष्यलोकं चेति सऽएतान्पशुनपश्यद् ग्राम्यांश्चारण्यांश्च तानालभत तैरिभौ लोकाव वारुद्ध ग्राम्येरेव पशुभिरिमं लोकमवारुद्धारण्यैरमुमयं वै लोको मनुष्य लोकोऽथासौ देवलोको यद्ग्राम्यान्पशूनालभतऽइममेव तैर्लोकं यजमानोऽवरुद्धे यदारण्यानमुतैः ॥१॥

प्रजापति ने चाहा कि दोनों को जीत लूँ, देवलोक को भी और मनुष्य लोक को भी । उसने इन गांव तथा वन के पशुओं को देखा । उनका आलभन किया । उनके द्वारा इन दोनों लोकों को साथ किया । गांव के पशुओं से यह लोक और वन के पशुओं से वह लोक । यह लोक मनुष्य लोक है वह लोक देवलोक है । यजमान गांव के पशुओं का आलभन करने से यह लोक पाता है, और वन के पशुओं का आलभन करने से वह लोक पाता है ॥१॥

स यद् ग्राम्यैः स स्थापयेत् । समध्वानः क्रामेयुः समन्तिकं ग्रामयोग्रयिन्तौ स्यातां नऽक्षीकाः पुरुषव्याघ्राः परिमोषिणऽआव्याधिन्यस्तस्कराऽअरण्येऽपवाजायेरन्यदारण्यैर्व्यध्वानः क्रामेयुर्विदूरं ग्रामयोग्रामान्तौ स्यातामृक्षीकाः पुरुषाव्याघ्राः परिमोषिणऽआव्याधिन्यस्तस्कराऽअरण्येऽपवाजायेरन् ॥२॥

यदि ग्रामीण पशुओं से ही यज्ञ संपूर्ति की जाय तो लोग ठीक मार्ग से चलें । दो ग्रामों के बीच में ग्रामों की सीमाएं लगातार मिल जाय रीछ, पुरुष-व्याघ्र, चोर, घातक, डाकू बनों में न रहने पावें । यदि वन के पशुओं से यज्ञ की संपूर्ति की जाय, तो लोग ठीक मार्ग से न चल सके । दो गांवों के बीच की सीमायें दूर-दूर हो जाये रीछ, पुरुष-व्याघ्र, चोर, घातक, डाकू बनों में भर जायें ।

तंदादुः । अपशुर्याऽऽष यदारण्यो नैतस्य होतव्यं यज्जुहुयात्क्षिप्रं यजमानमरण्यं मृतं हरेमुररण्य भागा ह्यारण्य पशवो यन्न जुहुयाद्यज्ञ-वेशसं स्यादिति पर्यग्नि कृतानेवोत्सृजन्ति तन्नैव हुतं नाहुतं न यजमानमरण्यं मृतं हरन्ति न यज्ञ वेशसं भवति ॥३॥

इस पर कहते हैं कि जब जंगल के पशुओं की तो पशुओं में गणना नहीं है । इनकी आहुति न देवे । यदि आहुति देगा तो शीघ्र ही मरे हुये यजमान को जंगल को ले जावेंगे । चूँकि जंगली पशुओं का तो जंगल में भाग है । यदि इस निमित्त आहुति



न दी जायेगी तो यज्ञ में त्रुटि रहेगी । अग्नि की परिक्रमा दिला कर उनको छोड़ देते हैं । यह न तो “हुत” और न “अहुत” है । और न मरे यजमान को जंगल में ले जाते हैं और न यज्ञ में त्रुटि रहती है ॥३॥

ग्राम्यैः सं स्थापयति । वि पितापुत्राववस्यतः समध्वानः क्रामन्ति समन्तिकं ग्रामयोग्रामान्तो भवतो नऽर्क्षीकाः पुरुष व्याघ्राः परिमोषिणऽआव्याधिन्यस्तस्कराऽअरण्येष्वा जायन्ते ॥४॥

ग्राम्य पशुओं से यज्ञ की सम्पूर्ति होती है । पिता पुत्र अलग-अलग होते हैं । सम भागों पर चलते हैं दो ग्रामों के बीच की सीमायें लगातार जाती हैं । रीछ, पुरुष, व्याघ्र, चोर, घातक, डाकू वनों में नहीं रहने पाते ॥४॥ ब्राह्मणम् (२-४)

—(०)—

## ब्राह्मण ५

### पश्वेकादशिनी

प्रजापतिरश्वमेघयसृजत । सोऽस्मात्सृष्टः पराङ्मैत्स पंक्तिर्भूत्वा संवत्सरं प्राविशत्तेऽर्धमासा अभवस्तं पंचदशिभिरनु प्रायुङ्क्त तमाप्नोत्तमाप्त्वा पंचदशिभिरवारुन्द्धार्धमासानां वाऽएषा प्रतिमा यत् पंचदशिनी यत्पंचदशिनऽआलभतेऽर्धमासानेव तैर्यजमानोऽवरुद्धे ॥१॥

प्रजापति ने अश्व का मेघ बहा दिया । वह इससे वह कर पांच रूपों में संवत्सर में प्रविष्ट हो गया । वे अर्धमास हो गये । उसने उसको पन्द्रह पशुओं द्वारा ग्रहण किया । ये जो १५ पशु हैं वे ही अर्धमासों की प्रतिमा है । १५ पशुओं का आलमन अर्धमासों की प्राप्ति के लिये है ॥१॥

तदाहुः । अनवरुद्धो वा ऽएतस्य संवत्सरो भवति यो ऽन्यत्र चातुर्मास्येभ्यः संवत्सरं तनुत ऽइत्येष वै साक्षात् संवत्सरो यच्चातुर्मास्यानि यच्चातुर्मास्यान्पशूनालभते साक्षादेव तत्संवत्सरमवरुद्धे वि वाऽएष प्रजया पशुभिर्ऋध्यतेऽप स्वर्गं लोकं राध्नोति योऽन्यत्रैकादशिनेभ्यः संवत्सरं तनुतऽइत्येष वै सम्प्रति स्वर्गं लोको यदेकादशिनी प्रजा वै पशवः ऽएकादशिनी यदेकाशिनान्पशूनालभते न स्वर्गं लोकमपराध्नोति प्रजया पशुभिर्व्यृध्यते ॥२॥

इस पर प्रश्न उठते हैं कि जो कोई चातुर्मास्य यज्ञ के अतिरिक्त अन्य रीति से संवत्सर रचाता है तो उसे संवत्सर की प्राप्ति नहीं होती । वस्तुतः चातुर्मास्य ही



संवत्सर है । चातुर्मास्य पशुओं के आलभन से साक्षात् संवत्सर की प्राप्ति होती है जो ११ बलियों के अतिरिक्त अन्य रीति से संवत्सर को रचता है; वह प्रजा और पशु से हीन हो जाता है और स्वर्ग लोक को प्राप्त नहीं होता । यह जो ११ पशुओं कि बलि है वह साक्षात् स्वर्ग है । ११ पशुओं की बलि प्रजा है, पशु है । जो ११ पशुओं का आलभन करता है, वह प्रजा तथा पशुओं से विहीन नहीं होता और न स्वर्ग लोक से वंचित होता है ॥२॥

प्रजापतिर्विराजमसृजत । साऽस्मात्सृष्टा पराच्यैत्साऽश्वं मेध्यं प्राविशत्तां दशिभिरनु प्रायुङ्क्त तामापनोत्तामाप्त्वा दशिभि रवारुन्ध यद्दशिनऽ आलभते विराजमेवतैर्यजमानोऽवरुन्धे शतमालभते शतायुर्व पुरुषः शतेन्द्रियऽप्रायुरेवेन्द्रियं वीर्यमात्मन्धत्ते ॥३॥

प्रजापति ने विराज को बनाया । जब वह बन गया तब उसके समीप से चला गया और मेध्य अश्व में घुस गया । उसने दश पशुओं द्वारा उसे अन्वेषण किया, तथा उसे प्राप्त कर लिया । उसको प्राप्त करके १० पशुओं द्वारा ग्रहण किया गया । १० पशुओं की बलि देने से यजमान विराज को प्राप्त कर लेता है । १०० का आलभन करता । पुरुष की आयु १०० वर्ष की होती है, आयु १०० पराक्रम वाली है । इस प्रकार अपने में ओज और पराक्रम को रखता है ॥३॥

एकादश दशतऽ आलभते । एकादशाक्षरा वै त्रिष्टुविन्द्रियमु वै वीर्यं त्रिष्टुविन्द्रियस्यैव वीर्यस्यावरुद्धयाऽएकादशतऽ आलभते दश वै पशोः प्राणाऽआत्मैकादशः प्राणैरेव पशूनसमर्घयति वैश्व देवा भवन्ति वैश्वदेवो वाऽअश्वोऽश्वस्यैव सर्वात्वाय बहुरूपा भवन्ति तस्माद् बहुरूपाः पशवो नानरूपा भवन्ति तस्मान्नानारूपाः पशवः ॥४॥

१०-१० पशुओं के ११ समूहों का आलभन करता है । त्रिष्टुप् पराक्रम तथा ओज और पराक्रम की प्राप्ति के लिये । १०-१० के ११ समूह लेता है पशुओं में १० प्राण होते हैं । आत्मा ११ वाँ होता है । इस प्रकार पशुओं में प्राणों की स्थापना करता है । ये सब विश्वदेवों के हैं । अश्व विश्वे देवों का है । अश्व की पूर्णता के लिए । ये कई रूपों के होते हैं । अतः पशु कई रूपों के हैं अथवा यों कहें अलग अलग रूप के होते हैं । अतः पशु पृथक् पृथक् रूप रखते हैं ॥ ॥

ब्राह्मणम् (२-५)



## ब्राह्मण ६

### अश्वस्य नियोजनाञ्जनमणिबन्धनादि

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तमिति । असौ वाऽआदित्यो ब्रध्नोऽरुषोऽमुमेवास्माऽ आदित्यं युनक्ति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥१॥

“युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तम्”

यजु २३/५

“रोष रहित चलते हुए आदित्य को जोतते है ।” इस मन्त्र से रथ में घोड़े को जोतते हैं ।

“ब्रध्न, अरुषं से तात्पर्य है आदित्य से । स्वर्ग लोक की प्राप्ति के लिए आदित्य के समान इस घोड़े को जोतता है ॥१॥

तदाहुः । पराङ्वाऽएतस्माद्यज्ञऽएति यस्य पशुरूपाकृतोऽन्यत्र वेदेरेतीत्येत स्तोतरेन पथा पुनरश्वमावर्तयासि नऽइति वायुर्व स्तोता तमेवास्माऽएतत्परस्ताद्घाति तथा नात्येति ॥२॥

इस पर शंका उठते हैं कि जिसका पशु लाया जाकर वेदी से इतर अन्य स्थान पर चला जाय, उसका यज्ञ भ्रष्ट हो जाता है । (इसलिए इस निम्न मन्त्र का जप करें)

एतं स्तोतरेन पथा पुनरश्वमावर्तयासि नः ।

यजु० २३/७

हे स्तोता इस मार्ग से फिर इस अश्व को हमको लौटाओ ।” वायु स्तोता है । वायु को ही वह यजमान के लिए उस ओर नियत करता है । इससे वह छोड़ा सीमा का उलङ्घन नहीं करता ॥२॥

अप वाऽ एतस्मात् । तेजऽइन्द्रियं पशवः श्रीःकामन्ति योऽश्वमेधेन यजते ॥३॥

जो अश्वमेध करता है उससे तेज, पराक्रम, पशु, भी भाग जाते हैं ॥३॥

वसवस्त्वाञ्जन्तु । गायत्रेणच्छन्दसेति महिष्यभ्यनक्ति तेजोऽआज्यं तेजो गायत्री तेजसीऽएवास्मिन्तसमीची दधाति ॥४॥

वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा

यजु० २३/८

इस मन्त्र से रानी घोड़े के अग्रभाग का घी से अभिषेक करती है । घी तेज है । गायत्री तेज है । इस प्रकार यजमान में वह इन दोनों तेजों को स्थापित करता है ॥४॥



( २९ )

रुद्रास्त्वाऽञ्जन्तु । त्रैष्टुभेनच्छन्दसेति वावाता तेजोवाऽआज्य-  
मिन्द्रियं त्रिष्टुप्तेजश्चैवास्मिन्निन्द्रियं च समीची दधाति ॥५॥

“रुद्रास्त्वाऽञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा”

यजु० २३/८

इस मन्त्र से वावाता (एक रानी) घोड़े के मध्य भाग का घी से अभिषेक करती है । घी तेज और पराक्रम है । त्रिष्टुभ भी तेज और पराक्रम है । इस प्रकार यजमान में तेज और पराक्रम स्थापित करता है ॥५॥

आदित्यास्त्वाऽञ्जन्तु । जागतेन च्छन्दसेतिपरिवृक्ता तेजोवाऽ-  
आज्यं पशवो जगती तेजश्चैवास्मिन्पशूंश्च समीची दधाति ॥६॥

“आदित्यास्त्वाऽञ्जन्तु जागतेन छन्दसा”

यजु० २३/८

इस मन्त्र से परिवृक्ता (छोड़ी हुई रानी) घोड़े के पिछले भाग का घी से अभिषेक करती है । घी तेज है । जगती पशु है । इस प्रकार वह यजमान में तेज तथा पशु दोनों की स्थापना करता है ॥६॥

पत्न्योऽभ्यञ्जन्ति । श्रियै वा एतद्रूपंयत्पत्न्यः श्रियमेवास्मिन्स्तद्धाति  
नास्मात्तेजोऽइन्द्रियं पशवः श्रीरपक्रामन्ति ॥७॥

यह अभिषेक पत्नियां करती है । पत्नियां श्री का रूप हैं इस प्रकार वह यजमान में श्री को स्थापित करता है । इससे तेज, पराक्रम, पशु या श्री बाहर नहीं जाते ॥७॥

यथा वै हविषो हुतस्य स्कन्देत् । एवमेतत्पशोस्कन्दति यस्य  
नित्तस्य लोमानि शीयन्ते यत्काचानावयन्ति लोमान्येवास्य सम्भरन्ति  
हिरण्मया भवन्ति तस्योक्तं ब्राह्मणमेकशतमेकशतं काचानादयन्ति शतायुर्वै  
आत्मैकशत आयुष्येवात्मन्प्रतितिष्ठति भूर्भुवः स्वरितिप्राजापत्याभिरा-  
वयन्ति प्रजापत्योऽश्वःस्वयैवैनं देवतया समर्धयन्ति लाजीऽञ्छाचीऽन्यव्ये  
गव्योऽइत्यतिरिक्तगन्तमश्वयोपाव हरति प्रजामेवान्नादीं कुरुतऽएतदन्न मत्त  
देवाऽएतदन्तम द्विप्रजापतऽ इति प्रजामैवान्नाद्येन समर्धयति ॥८॥

जैसे आहुति देते समय हवि में से कुछ भाग गिर जाता है । उसी प्रकार की यह बात है कि जब पशु के लोम भिगोये जाते हैं तो कुछ गिर जाते हैं, मानों पशु का भाग गिर गया । जब काच (दोनों) को पिरोती है तो मानों घोड़े के बाल संभालती हैं । ये काच सोने के होते हैं । इसका रहस्य हो चुका । हर एक में एक सौ एक काच होते हैं । सौ वर्ष की पुरुष की आयु होती है, एक सौ एकवाँ आत्मा है । इस प्रकार अपने में आयु को स्थापित करता है । “भूः” भुवः” स्वः” इन



( ३० )

प्रजापति वाली व्याहृतियों से वह उन काँचों को पिरोती है। अश्व भी प्रजापति का है। इस प्रकार इसको इसके ही देवता द्वारा समृद्ध करता है।

लाजीम् छाचीन् यव्ये गव्ये ।

यजु० २३/८

“लाजाओं के समूह, शाची या सत्तूओं के समूह, यव्य या जी के पदार्थ, गव्य या दूध के पदार्थ” इस मन्त्र से बचा हुआ अन्न (गाड़ी से) उतार लेता है। घोड़े के लिए। इस प्रकार यजमान की प्रजा को अन्न को खाने वाला बनाता है।

एतदन्नमत्त देवा एतदन्नमद्धि प्रजापते ।

यजु० २३/८

“देव। इस अन्न को खाओ। प्रजापति इस अन्न को खा।” इस प्रकार प्रजा को अन्न से समृद्ध करता है ॥८॥

अप वाऽएतस्मात् । तेजो ब्रह्मवर्चसं क्रामति योऽश्वमेधेन यजते होता च ब्रह्मा च ब्रह्मोद्यं वदतऽअग्नेयो वै होता बार्हस्पत्यो ब्रह्मा ब्रह्मवहस्पतिस्तेजश्चै वास्मिन् ब्रह्मवर्चसं च समीची घत्तो यूपमभितो वदतो यजमानो वै यूपो यजमान मेवैतत्तेजसा च ब्रह्मवर्चसेन चोभयतः परिधत्तः ॥६॥

जो अश्वमेध यज्ञ करता है, उसका तेज और ब्रह्मवर्चस चला जाता है। होता और ब्रह्मा ब्रह्मोद्य (शास्त्रार्थ) में जुटते हैं। होता अग्नि का है। और ब्रह्मा बृहस्पति का, क्योंकि बृहस्पति ब्राह्मण है। इस प्रकार इसमें तेज और ब्रह्मवर्चस को ठीक रीति से स्थापित करता है। यूप को बीच में करके ब्रह्मोद्य करते हैं। यजमान ही यूप है। इस प्रकार यजमान को चारों ओर से तेज और ब्रह्मवर्चस से युक्त कर देते हैं ॥९॥

कः स्वित्देकाकी चरतीति । असौ वाऽआदित्यऽएकाकी चरत्येष ब्रह्मवर्चसं ब्रह्मवर्चस मेवास्मिस्तद्धतः ॥१०॥

कः स्वित्देकाकी चरति

(यजु० २३।९-१०)

कौन अकेला चलता है—वह आदित्य ही अकेला चलता है। यह सूर्य ब्रह्मवर्चस है। इस प्रकार दोनों (होता तथा ब्रह्मा) ब्रह्मवर्चस को ही इसमें स्थापित करते हैं ॥१०॥

कऽउ स्वित्ज्जायते पुनरिति । चन्द्रमा वै जायते पुनरायुरेवास्मिस्तद्धतः ॥११॥

क उ स्वित्ज्जायते पुनः

(यजु० २३।९-१०)

कौन पीछे उगता है? पीछे चन्द्रमा उगता है। आयु को पीछे से इसमें स्थापित करते हैं ॥११॥



( ३१ )

किं स्विद्धिमस्य भेषजमिति । अग्निवै हिमस्य भेषजं  
तेजऽएवाष्मिंस्तद्धत् ॥१२॥

किं स्विद्धिमस्य भेषजम् (यजु० २३।१-१०)

ठंडक का क्या उपचार है ? अग्नि ही ठंडक का उपचार है । इस प्रकार  
उसमें तेज स्थापित करता है ॥१३॥

किंम्वाऽऽवपनं महदिति । अयं वै लोकऽआवपनं महदस्मिन्नेव  
लोकेप्रतिनिष्ठति ॥१३॥

“किंम्वावपनं” महत् (यजु० २३।१-१०)

बड़ा वर्तन कौन है ? वह लोक ही बड़ा वर्तन है । इस प्रकार लोक में उसको  
स्थापित करता है ॥१३॥

का स्विदासीत्पूर्वं चित्तिरिति । द्यौर्वैः वृष्टि पूर्वचित्तिदिवमेव  
वृष्टिमवरुद्धे ॥१४॥

का स्विदासीत् पूर्वचित्तिः (यजु० २३।११-१२)

पहली चित्ति क्या है ? द्यौ और वृष्टि पूर्वाचित्ति है । द्यौ और वृष्टि को  
प्राप्त करता है ॥१४॥

किं स्विदासीद् बृहद्वयऽइति । अश्वो वै बृहद्वयऽआयुरेवाव रुद्धे ॥१५॥

किं स्विदासीद् (बृहद्वयः) । (यजु० २३।११-१२)

बड़ा पक्षी कौन सा है ? घोड़ा ही बड़ा पक्षी है । आयु की ही प्राप्ति  
करता है ॥१५॥

का स्विदासीत्पिशंगिलेति । श्रीवैः पिलिप्पिला श्रियमेवाव रुद्धे ॥१६॥

का स्विदासीत् पिलिप्पिला (यजु० २३।११-१२)

चिकनी वस्तु कौन है । श्री ही चिकनी वस्तु है श्री को प्राप्त करता है ॥१६॥

का स्विदासीत्पिशंगिलेति । अहोरात्रे वै पिशंगिलेऽअहोरात्रयोरेव  
प्रतिनिष्ठति ॥१७॥

का स्विदासीत् पिशंगिला० (यजु० २३।११-१२)

भूरी वस्तु क्या है ? दिन और रात भूरे हैं । दिन और रात को प्राप्त  
करता है ॥१७॥ ब्राह्मणम् ॥१५॥२-६ प्रथमः प्रपाठकः ॥कण्डिका संख्या १०८॥





## ब्राह्मण ७

## अश्वस्य प्रोक्षणादि

नियुक्तेषु पशुषु । प्रोक्षणीरध्वयुरादत्तेऽश्वं प्रोक्षिष्यन्नन्वारब्धे  
यजमानऽआध्वरिकं यजुरनुद्रुत्याश्वमेधिकं यजुःप्रतिपद्यते ॥१॥

जब पशु बांध दिये गये, तब अध्वयु प्रोक्षणीपात्र को लेता है । घोड़े पर छींटे डालने के लिये । जब यजमान उसके पीछे खड़ा हुआ है, उस समय शीघ्र-२ सोम अध्वर के यजु का जाप करके अश्वमेघ सम्बन्धी यजु का आरम्भ करता है ॥१॥

वायुष्ट्वा पचतैरवत्विति । वायुरेवैनं पचत्यसितग्रीवश्छागैरित्य-  
ग्निर्वाऽसित ग्रीवोऽग्निरेवैनं च्छागैः पचति ॥२॥

वायुष्ट्वा पचतैरवत्

यजु० २३।१३

“वायु तेरी पके अन्न से रक्षा करे”

असित ग्रीवश्छागैः

यजु० २३।१३

काली गर्दन वाला वकरो द्वारा । काली गर्दन वाला अग्नि है । यह अग्नि उसको वकरो सहित पकाता है ॥२॥

न्यग्रोधश्चमसैरिति । यत्र वै देवा यजेनायजन्त तऽएतांश्चमसान् न्यौ-  
व्जस्तेन्यञ्चोऽरोहस्तस्मान्न्यञ्चोन्यग्रोधा रोहन्ति ॥३॥

“न्यग्रोधश्चमसैः”

यजु० २३।१३

जब देव यज्ञ कर रहे थे तो उन्होंने चमसों को लौट दिया और जो वूँदे नीचे गिरी, वे उग कर न्यग्रोध वृक्ष हो गया । इसलिये नीचे को कर देने से ही वीज उगता है ॥३॥

शल्मलिर्वृद्ध्येति । शल्मली वृद्धिं दधाति तस्माच्छल्मलिर्वन-  
स्पतीनां वर्ष्णिष्ठं वर्धन्ते ॥४॥

शल्मलिर्वृद्ध्या

यजु० २३।१३

शल्मलि में वृद्धि स्थापित करता है । इसलिए वनस्पतियों में शल्मलि बहुत बढ़ता है । ४।

एषस्य राध्यो वृषेति । अश्वे नैव रथं सम्पादयति तश्मादश्वो  
नान्यद्रथाद्वहति ॥५॥

एषस्य राध्यो वृषाः ।

यजु० २३।१३

यह नर रथ के योग्य । इससे रथको अश्व से युक्त करता है । इसलिये अश्व रथ के सिवाय और किसी वस्तु को नहीं लेजाता ॥५॥



( ३३ )

पद्भिश्चतुर्भिरेदगन्ति ।

तस्मादश्वस्त्रिभिस्तिष्ठंस्तिष्ठत्यथ युक्तः सर्वैः पद्भिःसममायुते ॥६॥

पद्भिश्चतुर्भिरेदगन्—

यजु० २३/१३

“चार पैरों से यहाँ आया है” इसलिए घोड़ा तीन पैर पर खड़ा रहता है, परन्तु रथ में जोतने पर सब पैरों से काम लेता है ॥६॥

ब्रह्माऽकृष्णश्च वैनंनोऽवत्विति । चन्द्रमा वै ब्रह्माऽकृष्णश्चन्द्र-  
मसऽए परिददाति नमोऽग्नयऽइत्यग्नयएव नमस्करोति ॥७॥

ब्रह्माऽकृष्णश्च नोऽवतु ।

२३/१३

“श्वेत ब्रह्मा हमको बचावे” श्वेत ब्रह्मा चन्द्रमा है । चन्द्रमा के अर्पण करता है ।

नमोऽग्नये ।

२३/१३

इससे अग्नि को नमस्कार करता है ॥७॥

सं शितोरश्मिना रथऽति । रश्मिनैव रथं सम्पादयति तस्मा  
द्रथः पर्युतो दर्शनीयतमो भवति ॥८॥

“संशितो रश्मिना रथः ”

२३/१३

रश्मियों से रथ को सजाता है । इसलिए रश्मियों से सजा हुआ रथ बहुत सुन्दर लगता है ॥८॥

सं शितो रश्मिना हयऽति । रश्मिनैवाश्वं सम्पादयति  
तस्मादश्वो रश्मिना प्रतिहृतो भूयिष्ठं रोचते ॥९॥

संशितो रश्मिना हयः ।

यजु० २३/१३

घोड़े को रस्सी से मुक्त करता है । इसलिये रस्सी से बंधा हुआ घोड़ा बहुत सुन्दर लगता है ॥९॥

सं शितोऽप्स्वप्सुजाऽति । अप्सुयोनिर्वाऽश्वः स्वयैवैनं  
योन्या समर्धयति ब्रह्मा सोम पुरोगव इति सोम पुरोगवमेवैनं स्वर्गं  
लोकं गमयति ॥१०॥

“संशितोऽप्सु अप्सुजा”

यजु० २३/१४

“अप्सुजा” घोड़ा है । इसलिये घोड़े को उसी की योनि से सम्पन्न करता है ।

ब्रह्मा सोम पुरोगवः

यजु० २३/१४

सोम को अगुआ बनाकर इसको स्वर्ग लोक को भेजता है ॥१०॥



“स्वयं वाजिस्तन्वं कल्पयस्वेति । स्वयं रूपं कुरुष्व यादृशमिच्छ  
सीत्येवैनं तदाह स्वयं यजस्वेतिस्वाराज्यमेवास्मिन्दधाति स्वयं जुषस्वेति  
स्वयं लोकं रोचयस्व यावन्तमिच्छसीत्येवैनं तदाह महिमा तेऽन्येन न  
सं न शऽइत्यश्वमेव महिम्ना समर्धयति ॥११॥

“स्वयं वाजिस्तन्वं कल्पयस्वेति”

२३/१५

हे घोड़े तू अपने शरीर को स्वयं बना” अर्थात् जैसे रूप चाहे धारण कर ।

“स्वयं यजस्व” इससे उसको स्वाराज्य देता है ।

“स्वयं जुषस्व” अर्थात् जितना तू चाहे इस लोक से आनन्द मना ।

“महिमा ते अन्येन न संनये” कोई तेरी महिमा की बराबरी नहीं कर  
सकता” । इससे उसको महिमा से मुक्त करता है । ११,

न वाऽऽऽएतन्म्रयसे न रिष्यसीति । प्रश्वासयत्येवैनं तद्देवां २॥१॥  
इदेषि पथिभिः सुगेभिरिति देव यानानेवैनं पथो दर्शयति यत्रासते सुकृतो  
यत्र ते ययुरिति सुकृद्भिरेवैनं सलोकं करोति तत्र त्वा देवः सविता  
दधात्विति सवितैवैनं स्वर्गं लोके दधाति प्रजायतये त्वा जुष्टं प्रोक्षा-  
मीत्युपा श्वथोपगृह्णाति ॥१२॥

न वा ऽ उ ऽ एतन्म्रयसे न रिष्यसि तू यहाँ न करेगा न दुःख पायेगा यजु  
२३/१६ के पास जाता है )” इस प्रकार वह उसको तू सुगम मार्ग से देवो तद्  
देवांऽइद्रेप्रियथिभिः सुगेभि देवलोक का मार्ग दिखाता है ।

यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुः ।

यजु २३/१६

जहाँ पुण्यात्मा रहते हैं और जहाँ वे गये हैं । इससे वह उसको पुण्यात्माओं  
की सलोकता दिखाता है ।

“तत्र त्वा देवः सविता दधातु” । यजु० २३/१६ “सविता उसको वहाँ ले  
जाता है ।

“प्रजायतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि” इससे वह चुपके-चुपके प्रोक्षणी पात्र को  
घोड़े के मुँह के नीचे रखता है ॥१२॥

अग्निः पशुरासीत् । तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स  
ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिवैताऽअपऽ इति यावानग्नेर्विजयो  
यावांल्लोको यावदैश्वर्यं तावांस्ते विजयस्तावांल्लोकस्तावदैश्वर्यं भविष्य  
तीत्येवैनं तदाह ॥१३॥

अग्निः पशुरासीत् तेनायजन्त स एतं लोकमजयद् यस्मिन्नग्निः स ते लोको  
भविष्यति तं जेष्यसि पिवैताअपः ॥

यजु० २३/१६



( ३५ )

अग्नि पशु था । उससे दोनों ने यज्ञ किया । उसने वह लोक जीत लिया ॥ १ जिस लोक में अग्नि है । २ वही तेरा लोक हो जायेगा । ३ "तू उसे जीत लेगा । इस जल को पी ।" इससे तात्पर्य यह है कि जितनी ४ अग्नि की विजय है, जितना अग्नि का लोक है, जितना ऐश्वर्य है, जितनी ही तेरी ५ विजय, तेरा लोक, तेरा ऐश्वर्य हो जायेगा ॥१३॥

वायुःपशुरासीत् । तेनायजन्त सऽएतंलोकमजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिवंताऽअपऽइति यावान्वायोविजयो सावाल्लोको ० ॥१४॥

यजु २३/१४

इससे तात्पर्य यह है कि वायु की जितनी विजय, जितना लोक, जितना ऐश्वर्य है, उतना तेरा भी होगा ॥१४॥

सूर्यः पशुरासीत् । तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्सूर्यः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि तं पिवताऽअपऽइति यावान्सूर्यस्म विजयो यावाल्लोको यावादैश्वर्यं तावांस्ते विजयस्तावाल्लोकस्तावदैश्वर्यं भविष्यतीत्येवैनं तदाह तयंयित्वाऽश्वं पुनः सं स्क्रुत्य प्रोक्षणीरित रान्पशून्प्रोक्षति तस्यातः ॥१५॥

सूर्यः पशुरासीत् । तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्सूर्यः स ते लोको भविष्यति ते जेष्यति पिवंता अतः । (यजु० २३/१६) इसके कहने का तात्पर्य यह है कि जितनी विजय सूर्य की है, जितना लोक तथा जितना ऐश्वर्य उतनी विजय, लोक तथा ऐश्वर्य तेरा भी होगा ।

घोड़े को तृप्त करते फिर प्रोक्षणी को शुद्ध करके दूसरे पशुओं को प्रोक्षित करता है ॥१५॥

ब्राह्मणम् (२'७)

—( ० )—

## ब्राह्मण ८

### मृतस्याश्वस्य परिक्रमणादि

देवा वाऽउदञ्चः । स्वर्गं लोकं न प्राजानंस्तमश्वः प्राजानाद्यदश्वे-  
नोदञ्चोयन्ति स्वर्गस्य लोकस्य प्रजात्यै वासोऽधिवासं हिरण्यमित्यश्वान-  
योपस्तृणान्ति यथा नान्यस्मै पशवे तस्मिन्नेनमधि संज्ञपयन्त्यन्ये रेवैनं  
तत्पशुभिर्व्याकुर्वन्ति ॥१॥

ऊपर को जाते हुये देवों को स्वर्ग लोक का मार्ग मालूम न था, घोड़ा जानता था । इसलिये ऊपर को जाते समय घोड़े को ले जाते हैं स्वर्ग लोक की प्राप्ति के लिये । घोड़े के नीचे एक कपड़ा, एक और बिछौना और सोना बिछा देते हैं और



यहाँ उसको वेहोश कर देते हैं (वध करते हैं) । ऐसा अन्य किसी पशु के साथ नहीं करते । इस प्रकार अन्य पशुओं से अश्व की विशेषता हो जाती है ॥१॥

धनन्ति वा एतत्पशुम् । यदेन संज्ञपयन्ति प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहेति संज्ञप्यमानऽआहुतीर्जुहोति प्राणानेवास्मिन्नेतद्यधाति तथो हास्यैतेन जीवतैव पशुनेष्टं भवति ॥२॥

वेहोश करना मरना ही है । जब वेहोश करते हैं, तो इन मंत्रों को बोलते हैं और आहुति देते हैं—प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा—यजु० २३/१० इस प्रकार उसमें प्राण स्थापित करता है । इस प्रकार जीवित पशु का ही यज्ञ हो जाता है ॥२॥

अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके । न मा नयति कश्चनेति पत्नी रुदानयत्यह्वतैवैनाऽएतदतो मेघ्याऽएवैनाः करोति ॥३॥

अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन—इस मंत्र से पत्नियों को ले जाता है । इससे वह उनको पुकारता है । वह उनको पवित्र करता है ॥३॥

गणानां त्वा गणपतिं हवामहेऽइति पत्न्यः परियन्त्यपन्धुवतऽएवास्माऽएतदतो न्येवाऽस्मै ह्वतेऽथो ध्रुवतऽएवैनं त्रिः परियन्ति त्रया वाऽइमे लोकाऽएभिरेवैनं तल्लोकैर्ध्रुवते त्रिः पुनः परियन्ति षट् सम्पद्यन्ते षड्वाऽऋतवऽऋतुभि रेवैनं ध्रुवते ॥४॥

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे—(यजु० २३/१९) पत्नियां परिक्रमा देती हैं । वे इस (वध) का प्रतीकार करती हैं, प्रतीकार तो हो जाता है । पंखा करती हैं । तीन परिक्रमायें होती हैं । तीन लौक होते हैं । इन्हीं लोकों द्वारा उसको पंखा करती हैं । तीन बार फिर परिक्रमा करती हैं छः हो जाते हैं छः ऋतुयें होती हैं, मानों ऋतुओं द्वारा ही पंखा करती हैं ॥ ४ ॥

अप वाऽएतेभ्यः प्राणाः क्रामन्ति । ये यज्ञे ध्रुवन तन्वते नव कृत्वः परियन्ति नव वै प्राणा प्राणा नेवात्मन्दधते नैभ्यः प्राणाऽअप क्रमन्त्या हमजानि गर्भधमा त्वजासि गर्भधमिति प्रजा वै पशवो गर्भः प्रजामेव पशुनात्मन्धत्ते ताऽ उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयावेति मिथुनस्यावरुद्धमै स्वर्गो लोके प्रोर्णुवाथामित्येष वै स्वर्गो लोको यत्र पशु संज्ञपयन्ति तस्मादेवमाह वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधात्विति मिथुनस्यैवावरुद्धयै ॥५॥ ब्राह्मणम् ॥ २ (२८)



( ३७ )

जो यज्ञ में पंखा करते हैं, उनके प्राण उनसे निकल जाते हैं। नौ बार परिक्रमा करती है। नौ प्राण होते हैं। इस प्रकार प्राणों को धारण करती हैं। इनसे प्राण निकलते नहीं।

आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ यजु० २३।१९

मैं गर्भ धारण करने वालों को प्रेरणा कहं। तू गर्भ धारण करने वाले को प्रेरणा कर। गर्भ का अर्थ है प्रजा और पशु। प्रजा और पशुओं को अपने में धारण करता है।

ता उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव ॥

यजु०-२३।२० ॥

हम दोनों चार पैरों को फैलावें। जोड़ा मिलाने के लिए।

स्वर्ग लोके प्रोणुवाथां ॥

यजु० २३।२० ॥

स्वर्ग लोक में अपने को ढको।

जहां पशु मारा जाता है वह स्वर्ग लोक ही है।

वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥

यजु० २३।२० ॥

बलवान वीर्य स्थापित करने वाला वीर्य स्थापित करे। जोड़े को मिलाने के लिए ॥५॥

—०—

## ब्राह्मण ६

### संवाद

अप वाऽएतस्मात् श्री राष्ट्रं कामति योऽअश्वमेधेन यजते ॥१॥

जो अश्वमेध यज्ञ करता है उससे श्री और राष्ट्र भी चले जाते हैं ॥१॥

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापयेति। श्रीर्व राष्ट्रमश्वमेधः श्रियमेवास्मै राष्ट्रमुर्वमुच्छ्रमयति ॥२॥

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय० यजु० २३।२० इस मन्त्र से इसको ऊँचा उठाता है। अश्वमेध श्री भी है और राष्ट्र भी, इस प्रकार उसके लिये श्री और राष्ट्र को उठाता है ॥ २ ॥

गिरौ भारं हरन्निवेति। श्रीर्व राष्ट्रस्य भारः श्रियमेवास्मै राष्ट्रं संनह्यत्यथो श्रियमेवास्मिन्राष्ट्रमधि निदधाति ॥३॥

गिरौ भारं हरन्निव ॥ यजु० २३।२६—पहाड़ पर भार ले जाने वाले के समान। श्री राष्ट्र का भार है। इसके लिये श्री और राष्ट्र की उसको दिलाता है। वह इस को श्री और राष्ट्र से सम्पन्न करता है ॥३॥

अणास्यै मध्यमेघतामिति। श्रीर्व राष्ट्रस्य मध्यं श्रियमेव राष्ट्रं मध्यतोऽन्नाद्यं दधाति ॥४॥



अथास्मै मध्यमेताम्० यजु० २३।२६" इसके मध्य भाग बड़े" । राष्ट्र मध्य (केन्द्र) श्री है । राष्ट्र के बीच में भी और अन्न स्थापित करता है ॥ ४ ॥

शीते शीते पुनस्त्रिवेति । क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतं क्षेममेवास्मै करोति ॥ ५ ॥  
शीते शीते पुनस्त्रिव । यजु० २३।२६ राष्ट्र का क्षेम 'शीत' है इससे उसके लिये क्षेम देता है ॥ ५ ॥

यकाज्यकौ शकुन्तिकेति ॥ विड्वै शकुन्ति काऽऽहलगितिवञ्चतीति विशौ वै राष्ट्राय वञ्चन्त्याञ्हन्ति गभेपसो निगललीति धारकेति विड्वै गभो राष्ट्रं पसो राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशंधातुकः ॥ ६ ॥

सकासकौ शकुन्तिका । यजु० २३।२२ शकुन्तिका-वैश्य (प्रजा) है । आह गितिवंचति ॥ यजु० २३।२२

वैश्य (प्रजाजन) राज के लिये शोर करते रहते हैं ।  
आहन्ति गभे पसो निगल गलीति धारकाः ॥ यजु० २३।२२

गम का अर्थ है वैश्य (या जनता) पस का अर्थ है राष्ट्र । राष्ट्र का दबाव वैश्यों को खलता है । इसलिये राष्ट्री या राजा जनता को दबाता है ॥ ६ ॥

माता च ते पिता च तऽइति । इयं वै माताऽऽसौ पिताऽऽभ्यामेवैनं स्वर्गं लोकं गमयत्य वृक्षस्य रोहतऽइति श्रीवै राष्ट्रस्याग्रं श्रीयमेवैनं राष्ट्रस्याग्रं गमयति प्रतिलामीति ते पिता गमे मुष्टिमत् सयदिति विड्वै गभो राष्ट्र मुष्टी राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशंधातुक ॥ ७ ॥

माता च ते पिता च ते ॥ यजु० २३।२४ = पृथ्वी माता है द्यौ पिता । इन्होंने दोनों के द्वारा स्वर्ग लोक को भेजता है । अग्रे वृक्षस्य रोहतः ॥ यजु० २३।२४ = श्री राष्ट्र का अग्रभाग है राष्ट्र को इसी श्री को प्राप्त कराता है प्रतिलामीति ते पिता गमे मुष्टिमत्सयत् ॥ यजु० २३।२४ गम वैश्य है और मुष्टी राष्ट्र है । राष्ट्र को वैश्यों पर दबाते हैं । इसलिये राष्ट्री जनता को खलता है ॥ ७ ॥

यद्वरिणो यवमत्तीति । विड्वै यवो राष्ट्रं हरिणो विशमेव राष्ट्रामाद्यां करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशु मन्यतऽइति तस्माद्राज पशून् पुष्यति शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायतीति तस्माद्वैशी पुत्रं नाभिषिञ्चति ॥ ८ ॥

युद्धरिणो यवमत्ति । यजु० २३।३० यव वैश्य है । हरिण राष्ट्र है, राष्ट्री विश्व को भोजन कर लेता है ।

इसलिये राष्ट्री प्रजा को खाता है ॥ न पुष्टं पशु मन्यते ॥ यजु० २३।३० इस प्रकार राजा पशुओं को बलिष्ठ नहीं बनाता ॥ शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति २३।३० इसलिये वैश्य के पुत्र का अभिषेक नहीं करता ॥ ८ ॥



( ३९ )

अपवाऽएतेभ्यः प्राणाः कामन्ति । ये यज्ञे पूतां वाचं वदन्ति दधि-  
क्राव्णोऽकारिषमिति सुरभिमतीमृचमन्ततोऽन्वाहुर्वाचमेव पुनते नैभ्यः  
प्राणाऽपक्रामन्ति ॥९॥

जो यज्ञ में अपवित्र वाणी बोलते हैं, उनके प्राण निकल भागते हैं ।

दधिक्राव्णोऽकारिषम् । (यजु० २३।३२) (ऋग० ४।३९।६) अन्त में इस ऋचा को पढ़ता है । इस ऋचा में सुरभि (सुगन्ध) शब्द आया है । इससे वे अपनी वाणियों को पवित्र करते हैं और प्राण उनसे निकलते नहीं ॥९॥

ब्राह्मण ॥३॥ (२-९)

• ○:○:○

## ब्राह्मण १०

अश्वशरीरे सूचीभिवितोदः

यदसि पथान्कल्पयन्ति । सेतुमेवतं संक्रमणं यजमानः कुरुते  
स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥१॥

असिपथ (तलवार के मार्गों) को बनाते हैं, यजमान स्वर्गलोक की प्राप्ति के लिये पुल के पार का मार्ग बनाता है ॥१॥

सूचीभिः कल्पयन्ति । विशो वै सूच्यो राष्ट्रमश्वमेधो विशं  
चैवास्मिन्राष्ट्रं च समीचा दधति हिरण्मय्यो भवन्ति तस्योक्तं  
ब्राह्मणम् ॥२॥

वह सुइयों से बनाया जाता है । सुइयाँ वैश्य हैं । अश्वमेध राष्ट्र और वैश्य को ठीक-ठीक स्थान देता है । ये सुइयाँ होने की होती हैं । इसका रहस्य बताया जा चुका है ॥२॥

त्रयः सूच्यो भवन्ति । लोहमय्यो रजता हिरण्यो दिशो वै  
लोहमय्योऽवान्तर दिशो रजताऽऊर्ध्वं हरिण्यस्ताभिरेवैन कल्पयन्ति  
तिरस्चीभिश्चोर्ध्वभिश्च बहुरुपा भवन्ति तस्माद् बहुरुपा दिशो नाना  
रूपा भवन्ति तस्मान्नानारूपादिशः ॥३॥

तीन प्रकार की सुइयाँ होती हैं, ताँबे, चाँदी और सोने की । दिशाएँ ताँबे की अन्तर दिशाएँ चाँदी की और ऊपर की दिशा सोने की हैं । इन दिशाओं के द्वारा ही इस मार्ग को बनाते हैं । सीधी और तिरछी सीवन से बहुरूप हो जाती है । इसलिये दिशाएँ बहुरूप हैं । नानारूप (अलग-अलग) होती है । इसलिए दिशाएँ नानारूप हैं ॥३॥

ब्राह्मण ॥४॥ (२-१०)



## ब्राह्मण ११

### परिपशव्याहुती

प्रजापतिरकामयत । महान्भूयान्त्स्यामिति सऽएताश्वमेधे महिमानौ  
ग्रहावपश्यत्तावजुहोत्ततो वै स महान्भूयानभवत्स यः कामयेत महान्भू-  
यान्त्स्यामिति सऽएतावश्वमेधे महिमानौ ग्रही जुहुयान्महान्मैव  
भूयान्भवति ॥१॥

प्रजापति ने चाहा कि मैं बड़ा और बहुत हो जाऊँ । उसने अश्वमेध यज्ञ में दो महिमान सोम ग्रहों को देखा और उनकी आहुतियाँ दीं । इससे वह बड़ा और बहुत हो गया । जो कोई चाहे कि बड़ा और बहुत हो जाऊँ, तो उसे चाहिये कि अश्वमेध में महिमान ग्रहों की आहुति देवे । वह बड़ा और बहुत हो जायेगा ॥१॥

वपाममभि जुहोति । यजमानो वाऽअश्वमेधो राजा महिमा राज्ये-  
नैवैनमुभयतः परि गृह्णाति पुरस्तात्स्वाहा कृतयो वा अन्ये देवाऽउपरिष्ठा-  
त्स्वाहा कृतयोऽन्ये तानेवैतत्प्रीणाति ॥२॥

वह यह आहुतियाँ वपा की दोनों ओर देता है । अश्वमेध यजमान है और महिमान ग्रह राजा है । इस प्रकार इसको दोनों ओर से घेर देता है । कुछ देवता पहले स्वाहाकार वाले हैं और कुछ पीछे स्वाहाकार वाले उन्हीं को प्रसन्न करता है ॥२॥

स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति राज्ञावपां परियजति ये चैवास्मिं-  
ल्लोके देवा यऽउ चामुष्मिंस्तानेवैतत्प्रीणाति तऽएनमुभये देवाः प्रीताः  
स्वर्गं लोकमभिवहन्ति ॥३॥

“स्वाहा देवेभ्यो” “देवेभ्यो स्वाहा” से सोम राजा के द्वारा क्या के आगे पीछे आहुतियाँ देता । इससे इस लोक के देव तथा परलोक के देवताओं को तृप्त करता है । ये दोनों प्रकार के देव उससे प्रसन्न होकर उसको स्वर्ग लोक को ले जाते हैं ॥३॥

ब्राह्मणम् (२-११)

इति द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ।



## अध्याय ३

## ब्राह्मण १

## अश्वव्यावदानम्

प्रजापतेरक्षयश्चयत् । तत्परायतत्ततोऽश्वः समभवद्यदश्वयत्तदश्व-  
स्याश्व त्वं तद्देवाऽअश्वमेघेनैव प्रत्यदवुरेष हवै प्रजापतिं सर्वं करोति  
योऽश्वमेघेन यजते सर्वऽएव भवति सर्वस्य वाऽएथा प्रायाचितिः सर्वस्य  
भेषजं सर्वं वाऽएतेन पाप्मानं देवाऽअतरन्नपि वाऽएतेन ब्रह्महत्यामतरं-  
स्तरति सर्वं पाप्मानं तरति ब्रह्महत्या योऽश्वमेघेन यजते ॥१॥

प्रजापति की आंखें सूज गई । वह निकल पड़ी । उससे घोड़ा उत्पन्न हुआ ।  
“अश्वयत्” का अर्थ है सूज गई । इससे अश्व शब्द बना । यही अश्व का अश्वत्व  
है । देवों ने अश्वमेघ यज्ञ करके उस आंख को फिर स्थापित किया । जो अश्वमेघ  
यज्ञ करता है । वह प्रजापति को अंगपूर्ण करता है और स्वयं अंगपूर्ण हो जाता है ।  
यह सबका प्रायोश्चित और सबका इलाज है । इससे देवता सब पापों से छूट जाता  
है । ब्रह्म हत्या से भी ॥१॥

उत्तरं वै तत्प्रजायते रक्षयश्चयत् । तस्मादुत्तरतोऽश्वस्यावद्यन्ति  
दक्षिणातोऽन्येषां यशूनाम् ॥२॥

प्रजापति की बाईं आंखें सूजी थी । इसलिए घोड़े की बाईं ओर से मांस  
काटते हैं और पशुओं की दाहिनी ओर से ॥२॥

वैतसः कटोभवति । अप्सुयोनिर्वाऽप्सुजा वैतसः स्वयैवैनं योन्या  
समर्घयति ॥३॥

नरकुल की चटाई होती है । अश्व जलों से उत्पन्न हुआ और नरकुल भी  
जलों से है । इस प्रकार इसकी ही योनि से इसकी समृद्धि करता है ॥३॥

चतुष्टोम स्तोमो भवति । सरङ्वाऽअश्वस्य सक्थ्या वृहत्तद्-  
देवाश्चतुष्टोमेनैव स्तोमेन प्रत्यदधुर्यच्चतुष्टोम स्तोमोभवत्यश्वस्यैव



सर्वत्यायसर्वस्तोमीऽति रात्रऽउत्तम महर्भवति सर्वं वै सर्वस्तोमोऽतिरात्रः  
सर्वमश्वमेधः सर्वस्याप्त्यै सर्वस्याप्त्यैरुद्धयै ।

चतुष्टोम स्तोम होता है । घोड़े की जांघ को मक्खी खा गई । देवताओं ने  
चतुष्टोम स्तोम से उसको पूर्ण किया । इसलिए चतुष्टोम स्तोम अश्व की अंग पूर्णता  
के लिये होता है । पिछला दिन सबस्तोमों के लिये सब चीजों की प्राप्ति के लिये  
अतिराम का होता है । सर्व स्तोम अतिराम सब कुछ है । अश्वमेध सब कुछ है ।

ब्राह्मणम् ॥६॥ (३-१)

## ब्राह्मण २

### वया प्रचार

परमेण वाऽएष स्तोमेन जित्वा । चतुष्टोमेन कृतेनायानामुत्तरेऽ-  
हन्नेकविंशे प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठत्येकविंशं शात्प्रतिष्ठायाऽउत्तरमहर्त्तु-  
नन्वारोहत्यृतवो वै पृष्ठान्यृतवः संवत्सरऽऋतुष्वेव संवत्सरे प्रति-  
तिष्ठति ॥१॥

जिस प्रकार पाँसों में सबसे मुख्य पाँसा “कृत” है, इसी प्रकार स्तोमों में  
मुख्य स्तोम अर्थात् चतुष्टोम के द्वारा विजय प्राप्त करके दूसरे दिन एक विशं  
प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित होता है । एक विश प्रतिष्ठा से दूसरे दिन ऋतुओं पर चढ़ता  
है । ऋतु पृष्ठ है, ऋतु संवत्सर है । इस प्रकार ऋतु रूपी संवत्सर में प्रतिष्ठित  
होता है ॥१॥

शक्वर्यः पृष्ठं भवन्ति । अन्यदन्यच्छन्दोऽन्येऽवाऽअत्र पशवऽआलम्य-  
न्तऽउतेव ग्राम्याऽउतेवारण्या यच्छक्वर्यः पृष्ठं भवन्त्यश्वस्यैव सर्वत्वा-  
यान्येपशवऽ अलाम्यन्तेऽन्ये हि स्तोमाः क्रियन्ते ॥२॥

दूसरे दिन के पृष्ठ “शक्वरी” मंत्र होते हैं । हर मन्त्र के छन्द अलग अलग  
क्योंकि हर दिन ग्राम्य या बनैले भिन्न भिन्न प्रकार के पशुओं का आलमन होता है ।  
अश्वमेध की पूर्णता के लिए शक्वरी मन्त्रों के पृष्ठ होते हैं और भिन्न-भिन्न दिनों  
में भिन्न-भिन्न पशुओं का आलमन होता है । अश्वमेध भिन्न-भिन्न दिनों में भिन्न-भिन्न  
स्तोम होते हैं ॥२॥

तदाहुः । नैते सर्वे पशवो यदजावयश्चारण्याश्चैते वै सर्वे पशवो यद्  
गव्याऽइति गव्यामुत्तमेऽ हञ्जालभतऽएते वै सर्वे पशवो यद् गव्याः सवनिव  
पशूनालमते वैश्वदेवा भवन्ति वैश्वदैवो वाऽअश्वोऽश्वस्यैव सर्वत्वाय



( ४३ )

बहुरूपाः भवन्ति तस्माद् बहुरूपा पशवो नानारूपा भवन्ति तस्मान्ना  
नारूपाः पशवः ॥३॥

इस पर शंका करते हैं कि बकरे, भेड़, बनेले पशु “सब पशु नहीं कहलाते ।  
“गाय” आदि तो कहलाते हैं, अन्तिम दिन गाय आदि का आलमन होता है ।  
क्योंकि वे सब पशु हैं । जो गाय आदि हैं । इस प्रकार सब पशुओं का आलमन करता  
है । ये विश्वे देवों के होते हैं । अश्व विश्वे देवों का है । अश्व की पूर्णता के लिये ।  
ये बहुरूप होते हैं । ये नानारूप होते हैं । इसलिए पशु नाना रूप होते हैं ॥३॥

ब्राह्मणम् ॥७॥ (३-२)

### • ब्राह्मण ३

यूपैकविंशतिः

यतिस्रोऽनुष्टुभो भवन्ति । तस्मादश्वस्त्रिभिस्त्रिंशंस्त्रिंशति यच्च-  
तस्रो गायत्र्यस्तस्मादश्वः सर्वैः पद्भिः प्रतिदधत्पलायते परम वाऽएतच्छ-  
न्दोयदनुष्टुप्परमोऽश्वः पशूनां परमश्चतुष्टोम स्तोमानां परमेणैवैनं परमतां  
गमयति ॥१॥

तीन अनुष्टुम होते हैं । इसलिए जब घोड़ा खड़ा होता है तो तीन पैर से ।  
ये चार गायत्रियों के बराबर होते हैं । इसलिए जब घोड़ा भागता है, चार पैरों को  
रखकर । अनुष्टुम छन्दों में सबसे बड़ा है । अश्व पशुओं में सबसे बड़ा है । चतुष्टोम  
स्तोमों में सबसे बड़ा है । इस प्रकार इसको बड़े से ही बड़े पद की प्राप्ति  
कराता है ॥१॥

शक्वर्यः पृष्ठं भवन्ति । अन्यदन्यच्छन्दोऽन्येऽन्ये हि स्तोमाः क्रियन्ते  
यच्छक्वर्यः पृष्ठं भवन्त्यश्वस्यैव सर्वत्वाय ॥२॥

(दूसरे दिन के) पृष्ठ शक्वर्य होते हैं भिन्न-भिन्न छन्द और भिन्न-भिन्न  
उनके स्तोम । शक्वर्य पृष्ठ होते हैं । अश्व की पूर्णतया के लिए ॥२॥

एक विंशं मध्यममहर्भवति । असौ वाऽआदित्यऽएक विंशः  
सोऽश्वमेघः स्वेनैवैनं स्तोमेन स्वायां देवतायां प्रतिष्ठापयति ॥३॥

बीच का दिन एक विंश होता । वह आदित्य ही एक विंश है । वही अश्वमेघ  
है इस प्रकार उसी के स्तोम से उसी के देवता में स्थापित करता है ॥३॥

वायदेव्यं मैत्रावरुणसाम भवति । प्रजापतिर्वै वामदेव्यं प्राजाप-  
त्योऽश्वः स्वयैवैनं देवतया समर्धयति ॥४॥

मैत्रावरुण साम वामदेव्य होता है । प्रजापति वामदेव्य है । प्रजापति अश्व  
है । इस प्रकार उसी के देवता से उसकी समृद्धि करता है ॥४॥



पार्थुरश्मं ब्रह्मसाम भवति । रश्मिना वाऽअश्वो यतऽईश्वरो  
वाअश्वोऽ यतोऽघृतोऽप्रतिष्ठितः परां परावतं गन्तोऽर्यत्पार्थु रश्मं ब्रह्मसाम  
भवत्यश्वयैव घृत्यै ॥५॥

ब्रह्मसाम पार्थुरश्म होता है । घोड़ा रस्सी से बाँधा जाता है । परन्तु जो  
घोड़ा न बँधे या बंध में न रहे या चंचल हो वह सीमा से बाहर जा सकता है ।  
घोड़े की चंचलता हटाने के लिये ब्रह्मसाम पार्थुरश्म होता है ॥५॥

संस्कृत्यच्छावाक साम भवति । उत्सन्नयज्ञऽइव वा ऽ एष यदश्वमेघः  
किं वा ह्येतस्य क्रियते किं वा न यत्संस्कृत्यच्छा वाक साम भवत्यश्वस्यैव  
सर्वत्वाय सर्वस्तोमोऽतिरात्रऽउत्तममहर्भवति सर्वं वै सर्वस्तोमोऽति रात्रः  
सर्वमश्वमेघः सर्वस्याप्त्यै सर्वस्यावरुद्ध्यै ॥६॥

अच्छा वाक साम संकृति होता है । यह जो अश्वमेघ है वह उत्पन्न यज्ञ है ।  
अर्थात् इसमें से कुछ भाग छूट गया है । इसमें से कुछ किया जाता है कुछ नहीं ।  
अश्व की पूर्णता के लिए ही अच्छा वाकसाम संकृति होता है । अन्तिम दिन अतिरात्र  
सर्वस्तोम होता है, सर्वस्तोम अतिरात्र “सब कुछ” है । अश्वमेघ “सब कुछ” है ।  
सब की प्राप्ति के लिए ॥६॥

एक विं शोऽग्निर्भवति । एक विं श स्तोमऽएक विं शतिर्यूपा  
यथा वाऽऋषभा वा वृषाणो वा स स्फुरेरन्नैवमेते स्तोमाः समृच्छन्ते  
यदेक विं शास्तान्यत्समर्पयेदार्ति माच्छेद्यंजमानो हन्येतास्य यज्ञः ॥७॥

अग्नि या वेदी एक विंशा होती है । स्तोम एक विंश होती है और यूप भी  
इक्कीस होते हैं । जैसे सांड या बँल लड़ पड़ते हैं । ऐसे ही यह एक विंश स्तोम भी  
यदि उनको स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय लड़ पड़े और यजमान की हानि यो तथा  
यज्ञ नष्ट हो जाय ॥७॥

द्वादशऽएवाग्नि स्यात् । एकादश यूपा यद् द्वादशोऽग्निर्भवति द्वादश  
मासाः संवत्सरः संवत्सरमेव यज्ञमाप्नोति यदेकादश यूपा विराड्वाऽएषा  
संमीयते यदेकादशिनी तस्यै यऽएकादश स्तनऽएवास्यै स दुहऽएवैनां  
तेन ॥८॥

इस पर शंका होती है कि यदि वेदी बारहवीं और ग्यारह यूप हों तो यह  
ऐसा ही होगा, जैसे एक बँल से गाड़ी खींची जाय । वेदी एकविंश (इक्कीसवीं) होती  
है । एकविंश स्तोम होते हैं । एकविंश यूप । यह वैसी ही बात है जैसे गाड़ी को  
बगली घोड़ों से खींचा जाय ॥८॥



( ४५ )

शिरो वा ऽ एतद्यस्य यदेक विंशः । यो वा ऽ अश्वमेघे त्रीणि शीर्षाणि वेद शिरोह राज्ञां भवत्येक विंशोऽग्नि भवत्येक विंशस्तमऽएक विंशतिर्यूपऽएतानि वाऽ अश्वमेघे त्रीणि शीर्षाणि तानि यऽ एवं वेद शिरोह राज्ञां भवति यो वाऽ अश्वमेघे तिस्रः ककुदो वेद ककुद राज्ञां भवत्येक विंशोऽग्निर्भवत्येक विंशस्तमऽएक विंशतिर्युपाऽ एता वाऽ अवमेघे तिस्रः ककुदस्ता यऽ एवं वेद ककुद राज्ञां भवति ॥१०॥

यह जो एकविंश है वह यज्ञ का सिर है । जो अश्वमेघ के तीन सिरों को जानता है, वह राजाओं का सरताज हो जाता है । वेदी एकविंश होती है । स्तोम एक विंश होते हैं यूप एक विंश होते हैं । ये अश्वमेघ के तीन सिर हैं । जो अश्वमेघ के इन तीन सिरों को जानता है, वह राजाओं का सरताज हो जाता है । जो अश्वमेघ के तीन कुव्वड़ों को जानता है, वह राजाओं में कुव्वड़ (ऊँचा) हो जाता है । वेदी एकविंश होती है । स्तोम एकविंश, यूप एक विंश, जो अश्वमेघ के इन तीन कुव्वड़ों को जानता है वह राजाओं में कुव्वड़ या बहुत ऊँचा हो जाता है ॥१०॥

ब्राह्मणम् ॥८॥ (३३)

(—:०:—)

## ब्राह्मण ४

### अश्वस्य लोहित श्रपणादि

सवम्यो वै देवताभ्योऽश्वऽआलभ्यते । यत्प्राजात्यं कुर्याद्या देवताऽ अपि भागास्ता भागधेयेन व्यर्धयेच्छाद दद्भिरवकां दन्दतमूलैरित्याज्यमवदानि कृत्वा प्रत्याख्यायन् देवताभ्यऽ आहुती जुहोति याऽ एव देवताऽ अपि भागास्ता भागधेयेन समर्धयत्यरण्येऽनूच्यान्हुत्वा द्यावापृथिव्यामुत्तमा माहुति जुहोति द्यावा पृथिव्योर्वे सर्वा देवताः प्रतिष्ठिता स्ताऽ एवेतत्प्रणाति देवासुराः संयत्ताऽ आसन् ॥१॥

अश्व का आलभन सब देवताओं के लिये किया जाता है । यदि केवल प्रजापति के लिये किया जाय तो अन्य देवता भी इसमें हिस्सेदार हैं, उनका हिस्सा छिन जाय । घोड़े को घोड़े के अवयवों का स्थानापन्न बना के देवताओं का नाम लेकर आहुतिय देता है । दांतों से घास, दांत की जड़ों से कमल.....इत्यादि (यजु० २५।११) इस प्रकार जिस जिस देवता का हिस्सा है, उसको दिलाता है । "अरण्ये



अनूच्य" आहुतियों को देकर अन्त में द्यौ और पृथिवी के लिये आहुति देता है। द्यौ और पृथिवी में ही सब देवता प्रतिष्ठित हैं। उन्हीं को इस प्रकार प्रसन्न करता है। देव और असुर झगड़ने लगे।

तेऽ बुवन् । अग्नयः स्विष्ट कृतोऽ श्वस्य वयमुद्धारमुद्धरामहे तेनासुरानाभि भविष्यामऽ इति ते लोहितमुदहरन्त भ्रातृव्याभिभूत्यै यत्स्विष्टकृद्भ्यो लोहितं जुहोति भ्रातृव्याभि भूत्यै भवत्यात्मना परास्य द्विषन्भ्रातृव्यो भवति यऽ एवं वेद ॥२॥

वे देव कहने लगे कि हम अश्वमेघ की स्विष्टकृत् अग्नियां हैं, हम विशेष भाग लें। उससे असुरों के जीत सकेंगे। उन्होंने अपने शत्रुओं को जीतने के लिये रुधिर को निकाला। जब वह स्विष्ट कृतों के लिये रुधिर की आहुति देता है, तो शत्रुओं को जीतने के लिये। जो इस रहस्य को समझता है, उसका शत्रु स्वयं ही नष्ट हो जाता है।

गोमृग कण्ठेन प्रथमामाहुतिं जुहोति । पशवो वै गोमृगाः रुद्रः स्विष्टकृत्पशूनेव रुद्रादन्तर्दधाति तस्माद्यत्रैषाऽश्वमेघऽआहुतिर्हूयते न तत्र रुद्रः पशूनभिमन्यते ॥३॥

गो मृग के कण्ठ से पहली आहुति देता है। गो मृग पशु हैं। स्विष्ट कृत् रुद्र है। रुद्र से पशुओं को बचाता है। इसलिये जहाँ यह अश्वमेघ की आहुति दी जाती है, वहाँ रुद्र पशुओं को नहीं सताता ॥ ३ ॥

अश्वशफेन द्वितीया माहुतिं जुहोति । पशवो वा ऽ एक शफा रुद्रः स्विष्टकृत्पशूनेव० ॥४॥ (पूर्ववत्)

घोड़े के खुर से दूसरी आहुति देता है। पशु एक खुर वाले होते हैं। स्विष्ट कृत् रुद्र है। पशुओं को रुद्र से बचाता है। इसलिये जहाँ पर अश्वमेघ की आहुति दी जाती है, वहाँ रुद्र पशुओं को नहीं सताता ॥ ४ ॥

अमस्मयेन चरुणा तृतीयामाहुतिं जुहोति । आयास्या वै प्रजाः रुद्रः स्विष्टकृत्प्रजाऽएव रुद्रादन्तर्दधाति तस्माद्यत्रैषाऽश्वमेघऽआहुतिर्हूयते न तत्र रुद्रः प्रजाऽ अभिमन्यते ॥५॥

लोहे के चरु पात्र से तीसरी आहुति देता है। प्रजा का लोहे से सम्बन्ध है स्विष्ट कृत् रुद्र है। इस प्रकार प्रजा को रुद्र से छुड़ाता है। इसलिए जहाँ पर अश्वमेघ की आहुति दी जाती है, वहाँ रुद्र प्रजाओं को नहीं सता सकता है ॥५॥

ब्राह्मणम् ॥९॥ (३-४)



( ४७ )

## ब्राह्मण ५

अश्वमेधेनापमृत्यु निरासः

सर्वेषु वै लोकेषु । मृत्यवोऽन्वायत्तास्तेभ्यो यदाहुतीर्न जुहुया-  
ल्लोके लोकऽएमं मृत्युविन्देद्यन्मृत्युभ्यऽआहुतीर्जुहोति लोके-लोकऽएव  
मृत्युमप जयति ॥१॥

सब लोकों का मृत्युओं से सम्बन्ध हो गया । इसलिये यदि मृत्युओं के लिए  
आहुतियाँ न दी जायें तो मृत्यु हर लोक में उसके पीछे पड़े । मृत्युओं के लिए  
आहुति देता है, इस प्रकार हर लोक में मृत्यु को जीत लेता है ॥१॥

तदाहुः । यदमुष्मै स्वाहाऽमुष्मै स्वाहेति जुह्वत् संचक्षीत वहुं  
मृत्युममित्रं कुर्वीत मृत्यवऽआत्मानमपिदध्यादिति मृत्यवेस्वाहेत्येकस्मा  
ऽएवैकामा हुति जुहोत्येको ह वाऽ अमुष्मिल्लोके मृत्यु रशना मेव  
तमेवामुष्मिल्लोके ऽ पजयति ॥२॥

इस पर कहते हैं कि यदि “उसके लिये स्वाहा” “उसके लिये स्वाहा”  
कह कर आहुतियाँ दे तो बहुत सी मृत्युओं को अपना शत्रु बना ले और अपने को  
मृत्युओं के हवाले कर दे । इसलिये केवल एक आहुति देता है । यह कह कर “मृत्यु  
के लिये स्वाहा” । क्योंकि मृत्यु एक ही हैं । उस लोक में मृत्यु को जीत लेता है,  
भूख को भी ॥२॥

ब्रह्म हत्याय स्वाहेति द्वितीयामाहुतिं जुहोति । अमृत्युर्ह वा ऽ  
अन्यो ब्रह्म हत्यायै मृत्युरेष ह वै साक्षान्मृत्युर्यद्ब्रह्महत्या साक्षादेव  
मृत्युमपजयति ॥३॥

“ब्रह्म हत्यायै स्वाहा” से दूसरी आहुति देता है । ब्रह्म हत्या से इतर मृत्यु  
तो अमृत्यु है । ब्रह्महत्या साक्षात् मृत्यु है, इस प्रकार मृत्यु को जीत लेता है ॥३॥

एता ह वै मुण्डिम ऽ ओदन्यः । ब्रह्म हत्यायै प्रायश्चित्तिं  
विदांचकार यद् ब्रह्म हत्यायाऽ आहुतिं जुहोति मृत्युमेवाहुत्या तर्पयित्वा  
परिपाणं कृत्वा ब्रह्मघ्ने भेषजं करोति तस्माद्यस्यैषाऽश्वमेध ऽ आहुति  
हूयतेऽपि योऽस्यापरीषु प्रजायां ब्राह्मणं हन्ति तस्मै भेषजं करोति ॥४॥

मुण्डिम ओदन्य ने ब्रह्महत्या के लिये प्रायश्चित्त निकाला । जब वह ब्रह्म-  
हत्या के लिये आहुति देता है, तो मृत्यु को आहुति द्वारा तृप्त करके ब्रह्म—घातक  
के लिये प्रयोग करता है । इसलिये जिस घर में दह ब्रह्म हत्या की आहुति दी जाती



है, उसके घर में यदि भविष्य में भी ब्राह्मण को कोई मार दे तो उसका भी प्रयोग (प्रायश्चित्त) होता है ॥४॥

ब्राह्मणम् ॥१०॥ (३-५)

—( ० )—

## ब्राह्मण ६

### अश्वस्तोमीयहोमः

अश्वस्य वाऽ आलब्धस्य । मेधोऽउदक्रामत्तदश्वस्तोमीयमभवद्यद-  
श्वस्तोमीयं जुहोत्य श्वमेव मेधसा समर्धयति ॥१॥

जब अश्व का आलभन हो चुका तो उसका मेघ उसमें से निकल गया । वह अश्वस्तोमीय आहुति बन गया । जो अश्वस्तोमीय आहुति देता है, वह अश्व को मेघ से परिपूरित करता है ॥१॥

आज्येन जुहोति । मेधो वाऽ आज्यं मेधोऽश्वस्तोमीयं मैधसैवास्मि  
स्तन्मेधो दधात्याज्येन जुहोत्ये तद्वै देवानां प्रियधाम यदाज्यं प्रियेणैवै-  
नान्धाम्ना समर्धयति ॥२॥

घी की आहुति देता है । घी मेघ है, मेघ अश्वस्तोमीय है । इस प्रकार मेघ के द्वारा ही उसमें मेघ स्थापित करता है । घी की आहुति देता है । घी देवताओं का प्रियधाम है । इस प्रियधाम से उसको परिपूरित करता है ॥२॥

अश्वस्तोमीयं हुत्वा द्विपदा जुहोति । अश्वो वाऽ अश्वस्तोमीयं  
पुरुषो द्विपदा त्रिपाद्वै पुरुषो द्वि प्रतिष्ठस्तदेनं प्रतिष्ठया समर्धयति ॥३॥

अश्वस्तोमीय आहुति देकर “द्विपद” आहुति देता है । अश्व अश्वस्तोमीय है और पुरुष द्विपद है । क्योंकि पुरुष के दो पैर होते हैं । इसकी प्रतिष्ठायें ( ठहरने का स्थान ) दो हैं । इसको इस प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित करता है ॥३॥

तदाहुः । अश्वस्तोमीय पूर्वं, होतव्यां ३ द्विपदा ३ऽइति पशवो  
वाऽ अश्व स्तोमीयं पुरुषो द्विपदा यदश्वस्तोमीयं हुत्वा द्विपदा जुहोति  
तस्मात्पुरुषोऽ उपरिष्ठात्पशून्धितिष्ठति ॥४॥

इस पर कहते हैं कि अश्वस्तोमीय की आहुति पहले दे या द्विपद की । पशु अश्व स्तोमीय है और पुरुष द्विपद । अश्वस्तोमीय आहुति देकर द्विपद की आहुति देता है । इसलिए पुरुष पशुओं का अधिष्ठाता है ॥४॥



( ४९ )

षोडशाश्वस्तोमीया जुहोति । षोडशकला वै पशवः सा पशूनां मात्रा पशूनेव मात्रया समर्धयति यत्कनीयसीर्वा भूयसीर्वा जुहुयात्पशून्मात्रया व्यर्धयेत्षोडश जुहोति षोडश कला वै पशवः सा पशूनां मात्रा पशूनेव मात्रया समर्धयति नान्यामुत्तमामाहुतिं जुहोति यदन्यामुत्तमामाहुतिं जुहुयात्प्रतिष्ठायै च्यवेत् द्विपदा ऽ उत्तमा जुहोति प्रतिष्ठा वै द्विपदाः प्रत्येव तिष्ठति जुम्बकाय स्वाहेत्यवभृथ ऽ उत्तमामाहुतिं जुहोति वरुणो वै जुम्बकः साक्षादेव वरुणमव यजते शुक्लस्य खलते-क्लिधस्य पिङ्गाक्षस्य मूर्धनि जुहोत्येतद्वं वरुणस्य रूपं रूपेणैव वरुणमवयजते ॥५॥

अश्वस्तोमीय आहुतियाँ सोलह होती हैं । पशुओं में सोलह कलायें होती हैं यह पशुओं की मात्रा है । इस मात्रा से पशुओं को समृद्ध करता है । यदि कम या अधिक देगा तो पशुओं को उनकी मात्रा से वंचित कर देगा । सोलह आहुतियाँ देता है क्योंकि पशुओं में सोलह कलायें होंती हैं । पशुओं की यह मात्रा है, इस मात्रा द्वारा ही पशुओं की परिपूर्ति करता है । किसी अन्य अन्तिम आहुति को नहीं देता । यदि अन्य अन्तिम आहुति को देवे तो प्रतिष्ठा से गिर जाय । अन्त की द्विपद आहुति होती है । द्विपदा प्रतिष्ठा है । इससे प्रतिष्ठा होती है । 'जुम्बकाय स्वाप्त' इससे अवभृथ स्नान की अन्तिम आहुति दी जाती है । "जुम्बक" वरुण है । वरुण को जीतने के लिये । सफेद दाग वाले, गंजे, दांत आगे को निकले हुये, पीली आंख वाले मनुष्य के सिर पर आहुति देता है । यह वरुण का रूप है । इस रूप से ही वरुण को जीतता है ॥५॥

द्वादश ब्रह्मदीनानुत्थाय निर्वपति । द्वादशभिवेष्टिभिर्यजते तदाहु यज्ञस्य वाऽएतद्रूपं यदिष्टयो यदिष्टिभिर्यजेतोपनामुकऽएनं यज्ञः स्यात्पापीयांस्तु स्याद्यातयामानि वाऽएतदीजानस्यच्छन्दांसि भवन्ति तानि किमेतावदाशु प्रयुञ्जीत सर्वा वै सँस्थिते यज्ञे वागाप्यत्ते साऽत्राऽप्ता यातयाम्नी भवति क्रुरीकृतेव हि भवत्यरुणकृता वाग्वै यज्ञस्तस्मान्न प्रयुञ्जीतेति ॥६॥

(जल से) निकल कर ब्राह्मणों के लिये बाहर ओदन या भात बनाता है । बारह इष्टियाँ करता है । इस पर कहते हैं कि इष्टियाँ यज्ञ का रूप है । यदि वह इष्टियाँ करेगा, तो यज्ञ उसकी ओर झुकेगा । परन्तु उसको हानि होगी, क्योंकि जिसने यज्ञ किया है उसके छन्द थक जाते हैं । वे क्षीघ्र प्रयोग के लिये कैसे तैयार हो सकेंगे । जब यज्ञ पूर्ण होगा तो वाणी की प्राप्ति होगी । वह वाणी प्राप्त होकर थक जायगी । वह घायल हो जायगी । वाणी यज्ञ है, इसलिए ऐसा न करे ॥६॥



द्वादशे ब्रह्मोदनानुत्थाय निर्वपेत् । प्रजापतिर्वाऽओदनः प्रजापति  
संवत्सरः प्रजापति यज्ञः संवत्सरमेव यज्ञमाप्नोत्युपनामुकऽएनं यज्ञो भवति  
न पापीयान्भवति ॥७॥

निकल कर वारह भाव ब्राह्मण के लिए बनावे । प्रजापति भाव है । प्रजापति  
संवत्सर है । प्रजापति यज्ञ है । संवत्सर रूपी यज्ञ को प्राप्त कर लेता है और क  
उसकी ओर झुकता है । इसकी हानि नहीं होती ॥७॥

ब्राह्मणम् ॥११॥ (३-६)

(—०—)

## ब्राह्मण ७

### अश्वमेध महिमा

एष वै प्रभूर्नाम यज्ञः । यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव प्रभूतंभवति ॥१॥

एष वै विभूर्नाम यज्ञः । यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव विभूतं  
भवात् ॥ २ ॥

एष वै व्यष्टिर्नाम यज्ञः । यत्रैतेन यजन्ते सर्वमेव व्यष्टि भवति ॥३॥

एष वै विघृतिर्नाम यज्ञः । यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव विघृतं  
भवति ॥ ४ ॥

एष वै व्यावृत्तिर्नाम यज्ञः । यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते व्यावृत्तं भवति ॥५॥

एष वाऽऊर्जस्वान्नाम यज्ञः । यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्व मेवोर्जस्व  
भवति ॥६॥

एषा वै पयस्वान्नाम यज्ञः । यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव पयस्व  
भवति ॥७॥

एष वै ब्रह्मवर्चसी नाम यज्ञः । यत्रैतेन यज्ञेन यजन्तऽआ  
ब्राह्मणो ब्रह्मवर्च सी जायते ॥८॥

एष वाऽअति व्याधी नाम यज्ञः । यत्रैतेन यज्ञेन यजन्तऽआ राजन्योऽति  
व्याधी जायते ॥९॥

एष वै दीर्घो नाम यज्ञः । यत्रैतेन यज्ञेन यजन्तऽआ दीर्घारण्यं  
जायते ॥१०॥

एष वै क्लृप्तिर्नाम यज्ञः । यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव क्लृप्तं  
भवति ॥११॥



( ५१ )

एष वै प्रतिष्ठा नाम यज्ञः । यत्रैतेन यज्ञेन सर्वमैव प्रतिष्ठितं  
ब्राह्मणम् ॥१२॥ (३-७) भवति ॥१२॥

(वारह दृष्टियां ये हैं) इस यज्ञ का नाम “प्रभू” है । जहाँ यह यज्ञ होता है,  
लोग प्रभूत (शक्ति वाले) होते हैं ॥१॥

इस यज्ञ का नाम “विभू” है । जहाँ यह यज्ञ होता है, वहाँ विभूति होती है ॥२॥

” ” ” ” “व्यष्टि” है । ” ” ” ” सब सफल होते हैं ॥३॥

” ” ” ” विष्टुवि है । ” ” ” ” सबकी कीर्ति होती है ॥४॥

” ” ” ” व्यावृत्ति है । ” ” ” ” सब वस्तु व्यावृत्त या  
सुरक्षित हो जाती है । ॥५॥

” ” ” ” अर्जस्वान् हैं । ” ” ” ” सब लोक ऊर्जस्वी हो  
जाते हैं ॥६॥

” ” ” ” पयस्वान है । ” ” ” ” सब लोग पयस्वी या रसयुक्त  
हो जाते हैं ॥७॥

” ” ” ” ब्रह्मवर्चसी है । ” ” ” ” सब लोग ब्रह्मवर्चसी हो  
जाते हैं ॥८॥

इस यज्ञ का नाम अति व्याधी है जहाँ यह होता है, वहाँ के क्षत्रिय लोग ठीक  
निशाना लगाने वाले होते हैं ॥९॥

इस यज्ञ का नाम “दीर्घ” है । जहाँ यह यज्ञ होता है, वहाँ बड़े-बड़े बन  
होते हैं ॥१०॥

इस यज्ञ का नाम “क्लृप्ति” है । जहाँ यह यज्ञ होता है वहाँ के लोग योग्य  
हो जाते हैं ॥११॥

इस यज्ञ का नाम “प्रतिष्ठा” है । जहाँ यह यज्ञ होता है । वहाँ सब लोग  
प्रतिष्ठित हो जाते हैं ॥१२॥ ब्राह्मणम् ॥१२॥ (३-७)

(—०—)

## ब्राह्मण द

### अश्वमेध प्रायश्चित्तम्

अथातः प्रायश्चित्तीनाम् । यद्याश्वी वडवा \* स्कन्देद्वायव्यं पयोऽ  
नुनिर्वमेद्वायुर्वे रेतसां विकर्त्ता प्राणो वै वायुः प्राशो हि रेतसा विकर्त्ता  
रेत सैवास्मिंस्तद्रेतो दधाति ॥१॥

अब प्रायश्चित्तों का वर्णन करते हैं । यदि घोड़ा किसी घोड़ी से प्रसंग करले,



तो "वायु" के लिये दूध की आहुति देवे । वायु वीर्यों का बखेरने वाला है । प्राण वायु है । प्राण वीर्यों का बखेरने वाला है । इस प्रकार इसमें वीर्य के द्वारा वीर्यधारण कराता है ॥१॥

अव यदि स्नामो विन्देत् । पौष्णं चरु मनु निर्वपेत्पूषा वै पशूनामीष्टे स यस्यैव पशवोः य पशूनामीष्टे तमेवैतत्प्रीणात्यगदो हैवभवति ॥२॥

यदि बीमार हो जाय तो "पूषा" के लिये चरु बनावे । पूषा पशुओं का स्वामी है । इस प्रकार जिसके पशु हैं या जो पशुओं का स्वामी है, उसको इससे प्रसन्न करता हुआ स्वस्थ हो जाता है ॥२॥

अथ यद्यक्ष्यमयो विन्देत् । वैश्वानर द्वादश कपालं भूमि कपालम् पुरो डाशमनु निर्वयेदियं वै वैश्वानर ऽइमामेवैतत्प्रीणात्यगदो हैव भवति ॥ ३ ॥

यदि बिना चोट लगे कोई कण्ट हो जाय तो "वैश्वानर" के बारह कपालों का पुरोडाश बनावे । इसमें मिट्टी के कपाल हों । यह पृथिवी वैश्वानर है, इसी पृथिवी को वह प्रसन्न करता हुआ स्वस्थ हो जाता है ॥३॥

अथ यद्यक्ष्यामयो विन्देत् । सूर्यं चरुमनुनिर्वपेत्सूर्यो वै प्रजानां चक्षुर्यदाहो वैषऽउदेत्यथेत सर्वं चरति चक्षुषैवास्मिंस्तच्चक्षुर्दधाति स यच्चरुर्भवति चक्षुषा ह्यायमात्मा चरति ॥४॥

यदि आँख में रोग हो जाय तो सूर्य के लिये चरु बनावे । सूर्य प्रजाओं का चक्षु है । जब यह निकलता है, तब सब चलते फिरते हैं । वह चक्षु रखता है, चरु क्यों होता है ? इसलिए कि मनुष्य चक्षु द्वारा ही चलता है ॥ ४ ॥

अथ यद्युदके म्रियेत । वारुणं यवमयं चरु मनु निर्वपेद्वरुणो वाऽएतं गृह्णाति योऽप्सु म्रियते सा यैवैनं देवता गृह्णाति तामेवैतत्प्रीणाति साऽस्मै प्रीत ऽन्यमालम्भायानुमन्यते तयाऽनुमतमालभते स यद्यवमयो भवति वरुण्या हि यवाः ॥५॥

यदि घोड़ा जल में डूब के मर जाय तो "वारुण" देवता का जौ का चरु बनावे जो जल में मरता है उसको वरुण पकड़ लेता है । जो देवता इसको पकड़ता है, उसी देवता को प्रसन्न करता है । वह देवता प्रसन्न होकर अन्य पशु के आलम्भन की अनुमति दे देता है और उसी की अनुमति से आलम्भन किया जाता है । जौ का चरु इस लिये होता है कि जौ वरुण का होता है ॥५॥



अव यदि नश्येत् । त्रि हविषमिष्टिमनुनिर्वेद्द्यावापृथिव्यमेकं कपालं पुरोडाश वायव्यं पयः सौर्यं चरं यद्वै किं च नश्यत्यन्तरैव तद्-  
द्यावा पृथिवी नम्यति तद्वायुरूप वात्यादित्योऽभि तपति नैताम्यो देवताभ्यः  
चट ते किञ्चन नश्यति सैषा पृथगेव नष्ट वेदनी स यद्यस्याप्यन्यन्नश्येदेत  
मैव मजेतानु हैवेनद्विन्दत्यथ यद्यमिचाऽअश्वंविन्दे रन्यदि वा म्रियेत यदि  
वा ऽऽस्वन्पमानीय श्रेथुः रैव तत्र प्रायश्चित्तिः ॥६॥

यदि घोड़ा नष्ट हो जाय, तो तीन हवियों की एक दृष्टि करे घौ और  
पृथिवी के लिए कपल का पुरोडाश, वायु के लिये दूध, सूर्य के लिये चर । जो चीज  
नष्ट हो जाती है, वह घौ और पृथिवी के बीच में ही नष्ट होती है । तब उस पर  
चलता है, सूर्य उस पर चमकता है । इन देवताओं से छिपकर कोई चीज नष्ट हो  
ही नहीं सकती, यह दृष्टि अलग भी नष्ट वेदती अर्थात् कोई हुई वस्तु को दिखाने  
वाली है । जिस किसी की चीज खो जाय वह दृष्टि करे । वह उसको पा जायेगा ।  
यदि शत्रु घोड़े को ले जाय या मर जाय तो दूसरे घोड़े को लाकर उस पर जल के  
छीटें देवे । वही उसका प्रायश्चित्त है ॥६॥

ब्राह्मणम् ॥१ (३-८)

इति तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥



## अध्याय ४

## ब्राह्मण १

## अश्वमेधारम्भकालादि

प्रजापतिरकामयत । सर्वन्कामानाप्नुयात्, सर्वा व्यष्टीर्व्यशुवीयेति सऽ एतमश्वमेध त्रिरात्रं यज्ञं क्रतुमपयत्तमाहरत्तेनायजत तेनेष्ट्वा सर्वान् कामानाप्नोत्सर्वा व्यष्टिर्व्यशुत सर्वान्ह वै कामानाप्नोति सर्वा व्यष्टीर्व्यशुते मोऽश्वमेधेन यजते ॥१॥

प्रजापति ने इच्छा की मेरी सब कामनायें पूरी हो जावें, मुझे सब पदार्थ मिल जायें, उसने इस (त्रिराज) तीन रात वाले यज्ञ क्रतु अश्वमेध को देखा और उसको ले आया । उससे यज्ञ को करके सब कामनाओं को पूरा किया । सब पदार्थों को प्राप्त किया । जो अश्वमेध यज्ञ करता है वह सब कामनाओं की पूर्ति करता है और सब पदार्थों को प्राप्त कर लेता है ॥१॥

तदाहुः । कश्मिन्ननृतावभ्यारम्भऽइति ग्रीष्मेऽभ्यारभेतेत्यु हैकऽआहु-  
ग्रीष्मो वै क्षत्रियस्यऽर्तुः क्षत्रिय यज्ञ उ वा एष यदश्वमेधऽइति ॥२॥

अब प्रश्न होता है कि किस ऋतु में आरम्भ करना चाहिए । कुछ लोग कहते हैं कि ग्रीष्म में आरम्भ कर दिया जाय । क्योंकि ग्रीष्म क्षत्रिय की ऋतु है तथा यह अश्वमेध क्षत्रिय का है ॥२॥

तद्वै वसन्तऽएवाभ्यारभेत । वसन्तो वै ब्राह्मणस्यऽर्तुर्यऽउ वै कश्च यजते ब्राह्मणीभूये वैव यजतेतस्माद्वसन्तऽएवाभ्यारभेत ॥३॥

परन्तु वसन्त में आरम्भ करे । वसन्त ऋतु ब्राह्मण की है, जो कोई यज्ञ करता है तो वह ब्राह्मण बनकर ही यज्ञ करता है । इसलिए वसन्त में ही यज्ञ आरम्भ करे ॥३॥

सा याऽसौफाल्गुनी पौर्णमासी भवति । तस्यैपुरस्तात्पडहेवा सप्ताहे-  
वऽत्विजऽउपसमायत्यध्वर्युश्च होता च ब्रह्मा चोद्गाता चैतान्वाऽअन्वन्यऽ  
ऋत्विजः ॥४॥

फाल्गुन की जो पौर्णमासी होती है उसके छः सात दिन पहले यह ऋत्विज इकट्ठे होवें—ऊध्वर्यु, होता, ब्रह्मा उद्गाता । अन्य ऋत्विज भी इन्हीं के आधीन होते हैं ॥४॥



( ५५ )

तेभ्योऽध्वर्युश्चातुप्राश्यं ब्रह्मौदनं निर्वपति । तस्योक्तं ब्राह्मणं चतुरः  
पात्रांश्चतुरोऽञ्जलीश्चतुरः प्रसृतान्द्वादश विधं द्वादश मासाः संवत्सरः  
सर्वं संवत्सरः सर्वमश्वमेघः सर्वस्याप्त्यै सर्वस्यावरुद्धयै ॥५॥

अध्वर्यु उनके लिए इतना भात पकावे, जो चार पुरुषों के लिए पुष्कल हो ।  
इस तत्व का रहस्य बताया जा चुका है । चार पत्र, चार अंजली और चार मुट्ठी,  
ये बारह हुए । संवत्सर में बारह मास होते हैं । संवत्सर सब कुछ है । अश्वमेघ सब  
कुछ है । सबकी प्राप्ति के लिए, सबकी पूर्ति के लिये ॥५॥

तमेते चत्वारः ऋत्विजः प्राश्नन्ति । तेषामुक्तं ब्राह्मणं तेभ्यश्चत्वारि  
सहस्राणि ददाति सर्वं वै सहस्रं सर्वमश्वमेघः सर्वस्याप्त्यै सर्वस्यावरुद्धयै  
चत्वारि च सुवर्णानि शतमानानि हिरण्यानि तस्योऽएवोक्तम् ॥६॥

इसको ये चार ऋत्विज खाते हैं । इनका बताया जा चुका है । उनको चार  
हजार गायें दी जाती हैं । सहस्र का अर्थ है “सब” । अश्वमेघ सबकी प्राप्ति के  
लिए “सब” है । चार सोने की तश्तरियाँ जो तौल में सौ सौ मान की होती है ।  
इसकी व्याख्या भी हो चुकी है ॥६॥

अथास्माऽअध्वर्युर्निष्कं प्रतिमुञ्चन्वाचयति । तेजोऽसि शुक्रममृतमिति  
तेजो वै शुक्रममृतं हिरण्यं तेजोऽएवास्मिञ्छुक्रममृतदधात्यायुष्पाऽआयुर्म-  
पाहीत्यायुरेवास्मिन्दधात्यथैनमाह वाचं यच्छेति वाग्वै यज्ञो यज्ञस्येवाभ्या-  
रम्भाय ॥७॥

अध्वर्यु यजमान के निष्क लटका कर यह जप करता है —

यह जो निष्क है वह तेज, शुक्र और अमृत है । इससे यजमान तेज, शुक्र  
और अमृत स्थापित करता है । मेरी आयु की रक्षा कर इससे उसमें आयु देता है ।  
वाक् की आरम्भ करना यज्ञ के ही आरम्भ के लिए वाक् यज्ञ है ॥७॥

चतस्रो जायाऽउपक्लृप्ता भवन्ति । महिषी वावाता परिवृक्ता  
पालागली सर्वा निष्क्रिण्योऽअलंकृता मिथुनस्यैव सर्वत्वाय ताभिः सहागन्य-  
गारं प्रपद्यते पूर्वया द्वारा यजमानो दक्षिणया पत्न्यः ॥८॥

यजमान की चार पत्नियाँ सेवा में उपस्थित रहती हैं, महिषी वावाता,  
परिवृक्ता और पालागली । पति-पत्नी की पूर्णता के लिये । सब सोने के हार पहने  
हुए हैं । उनके साथ अग्निग्रह में पूर्व द्वार से यजमान तथा दक्षिण द्वार से पत्नियाँ  
प्रवेश करती हैं । ॥८॥



सायमाहुत्या ँ हुतायाम् । जघनेन गार्हपत्यमुदङ् वावातया सह  
स विशति तदेवापीतराः संविशन्ति सोऽन्तरोरू ऽ असंवर्तमानः शेतेऽनेन  
तपसा स्वस्ति संवत्सरस्मोदृच ँ समश्नवाऽइति ॥९॥

सायंकाल की आहुति देने के पश्चात् गार्हपत्य के पीछे उत्तर की ओर सिर  
करके वावाता के साथ लेटता है । वहीं दूसरी पत्नियाँ भी लेटती हैं । वह उसके  
पास चिपट कर नहीं सोता है । वह यह सोचता है कि तप से वर्षा के अन्त तक  
समृद्धि को प्राप्त होऊँ ॥९॥

प्रातराहुत्या ँ हुतायाम् । अध्वर्युः पूर्णाहुति जुहोति सर्वं वै पूर्णं  
सर्वमश्वमेधः सर्वस्याप्त्यै सर्वस्यावरुद्ध्यै तस्यां वरेण वाचं विसृजते वरं  
ददामि ब्रह्माणऽइति सर्वं वै वरः सर्वमश्वमेधः सर्वस्याप्त्यै सर्वस्याव  
रुद्ध्यै ॥१०॥

प्रातःकाल की आहुति देकर अध्वर्यु पूर्ण आहुति देता है “सर्वं वै पूर्णं” ।  
अश्वमेध “सब” है । सब की प्राप्ति के लिये, सब की उहलविधि के लिए । इसके  
पीछे “वरदान” द्वारा वाणी को छोड़ता है अर्थात् बातें आरम्भ करता है यह कह  
‘वर’ “ददामिब्रह्माणे” (ब्रह्मा के लिये वर देता हूँ) । वर “सब” है । अश्वमेध सब  
की प्राप्ति के लिये, सबकी उपलब्धि के लिये “सब” है । ॥१०॥

अथ योऽस्य निष्कः प्रतिसुक्तो भवति । तमध्वर्यवे ददात्यध्वर्यवे  
द द द मृतमायुरामन्वत्तेऽमृतं ह्यायुऽहिरण्यम् ॥११॥

यह जो उसके गले में निष्क है, उसे ऊध्वर्यु को देता है, इसको ऊध्वर्यु को  
देकर अमृत और आयु को उसमें स्थापित करता है । क्योंकि सोना आयु है ।  
अमृत है ॥

अथाग्नेयीमिष्टिं निर्वयति । पथश्च कामाय यज्ञ मुखस्य चाछम्बट-  
कारायाथोऽग्निमुखा ऽ उ वै सर्वा देवताः सर्वेकामाऽअश्वमेधे मुखतः  
सर्वान्देवान्प्रीत्वा सर्वान्कामानाप्नवानीति ॥१२॥

अब अग्नि की दृष्टि को करता है, कार्ग की इच्छा से और यज्ञ के मुख  
(आरम्भ) की प्राप्ति के लिये । सब देवता अग्नि-मुख (अग्नि है मुख जिनका ऐसे)  
होते हैं । अश्वमेध में सब कामनायें रहती हैं । वह सोचता है कि सब देवों को  
प्रसन्न करके सब कामनाओं को प्राप्त कर लूँ ॥१२॥



( ५७ )

तस्मै यञ्चरथ सामिधेन्यो भवन्ति । पंचदशौ वै वज्रो वीर्यवज्रो  
वज्रोणेवैतद्वोर्येण यजमानः पुरस्तात्, पाप्मानमपहते वा वार्त्रघ्ना वाज्यभागौ  
पाप्मा वै वृत्रः पाप्मनोऽपहत्याऽग्निमूर्धा दिवः ककुदभुवो यज्ञस्य रज-  
सश्च नेतेत्युपां शु हविषो याज्याऽनु वाक्ये भूर्धन्वत्यन्या भवति सद्वत्यन्येष  
वै मूर्धा यऽएष तपत्येतस्यैवाव रुद्ध्याऽअथ यत्सद्वीतीसदेवा वरुद्धे  
विराजो संयाज्ये सर्वं देवत्यं वाऽएतच्छन्दो यद्विराट् सर्वे कामाऽ  
अश्वमेधे सर्वान्देवान्प्रीत्वा सर्वान्कामानाप्तवानीति हिरण्यं दक्षिणा  
सुवर्णां शतमानं तस्योक्तं ब्राह्मणम् ॥१३॥

इसके लिए पन्द्रह सामिधेनियाँ होती वज्र पन्द्रह वाला है । वीर्य वज्र है ।  
वीर्य वज्र से पहले यजमान बुराई को दूर करता है । वाज्य भाग की दो आहुतियाँ  
वृत्रघ्न (इन्द्र) की होती है । वृत्र पाप है । पाप को दूर करने के लिए ।

(१) अग्निमूर्धा दिवः ककुद पतिः पृथिकऽअयम् यजु० १३/१४

(२) भुव यज्ञस्म रजसव्च नेता यात्रा नियुद्धिः यजु० १३/१५

हवि के ये याज्यऔर अनुवाक्य चुपके-चुपके कहे जाते हैं । एक में "मूर्धा"  
शब्द है दूसरी में सद ( "भुवः" ) यह जो तपता है अर्थात् सूर्य वह मूर्धा  
है । उसी की प्राप्ति के लिये । सद वाली इसलिये कि जो "सत्" है उसकी  
प्राप्ति हो ।

दो संयाज विराट् छन्द में होते हैं । विराट् सब देवताओं का छन्द है ।  
अश्वमेध में सब कामनायें हैं वह सोचता है कि सब देवों को प्रसन्न करके सब  
कामनाओं को पूरा करूं । सौ मान स्वर्ण इसकी दक्षिणा है इसकी व्याख्या हो  
चुकी है ॥१३॥

अव पौष्णी निर्वपति । पूषा वै पथीनामधिपतिरश्वायवैतत्स्व-  
रस्ययनं करोत्य थोऽइयं वै पूषेमामेवास्माऽएतद् गोप्त्रीं करोति  
तस्य हि नातिरस्ति न ह्वलार्यामयमध्वन्गोयायती मामेवास्माऽएतद्  
गोप्त्रीं करोति ॥१४॥

अव पूषा की इष्टि को करता है । पूषा पथिकों का अधिपति है । घोड़े के  
यह शुभ यात्रा लाभ करता है । यह पृथ्वी ही पूषा है । इस प्रकार इस पृथ्वी को ही  
इसका रक्षक बनाता है । जिसकी पृथ्वी मार्ग में रक्षा करती है, या जो इस पृथ्वी  
को रक्षक बनाता है, उसको कोई कष्ट, कोई हानि नहीं होती ॥१४॥

तस्यै सप्तदश सामिधेन्यो भवन्ति । सप्तदशौ वै प्रजापति  
प्रजापतिरश्वमेधोऽश्वमेधस्यैवाप्त्यै वृधन्वन्तावाज्यभागौ यजमानस्यैव



वृद्ध्यै पूषस्तव व्रते वयं पथस्यशः परिपतिं वचस्येत्यूपां, शु हविषो  
याज्याऽनु वाक्ये व्रतवत्यन्या भवति पथन्वत्यन्या वीर्यं वै व्रत वीर्यं स्यात्पथं  
वीर्यस्यवरुद्धयऽ अथयत्यन्व त्यश्वायै वै तत्स्वस्त्ययनं करोत्यनुष्टुभौ संमाज्ये  
वाग्वाऽअनुष्टुब्वाग्वै प्रजापतिः प्रजापतिरश्वमेधोऽश्वमेधस्यै वाप्त्यै वासः  
शतं दक्षिणा रूपं वाऽएतत्प्ररूषस्य यद्वासस्तस्माद्येव कं च सुवाससमाहुः  
को न्वयमिति रूप समृद्धौ हिभवतिरूपेवैनं, समर्घयति शतं भवति  
शतायुर्वे पुरुषः शतेन्द्रियऽआयुरेवेन्द्रियं वीर्यमात्मन्धत्ते ॥१५॥

उसकी सत्रह सामिधोनियाँ होती हैं। प्रजापति सत्रह वाला हैं। प्रजापति  
अश्वमेध है। अश्वमेध की प्राप्ति के लिए। यजमान की वृद्धि के लिए दो आज्ञा  
भागवृद्धि वाले होते हैं।

(१) पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कंदाचन०/

यजु० ३४/४१

(२) यमस्यथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो०

यजु० ३४/४२

ये दो हानियों के याज्य और अनुवाक्य चुपके-चुपके दिये जाते हैं, एक में  
“व्रत” शब्द है। दूसरे में “पथ”। व्रत वीर्य है। वीर्य की प्राप्ति के लिए। “पथ”  
इसलिए कि घोड़े के मार्ग को कल्याणकारी बनाता है। दोनों संयाज अनुष्टुभ छन्द  
में होते हैं। वाक् अनुष्टुभ है। वाक् प्रजापति है। प्रजापति अश्वमेध है। अश्वमेध  
की प्राप्ति के लिए। दक्षिणा में सौ वस्त्र होते हैं। वस्त्र पुरुष का वाह्य रूप है।  
इसलिए जो अच्छे वस्त्र पहने होता है, उसको देखकर लोग कहते हैं यह कौन है?  
क्योंकि यह रूप समृद्ध है। उसको रूप से सम्पन्न करता है। सो इसलिए होते हैं  
कि पुरुष की आयु सौ वर्ष की होती है। आयु सौ पराक्रम की होती है। इस प्रकार  
अपने में वीर्य और पराक्रम को धारण करता है ॥१५॥



## ब्राह्मण २

सावित्र्य इष्टयः पारिप्लवाशंसनादि च निरूप्यन्ते—(१)

एतस्यां तापमानायाम्। अश्वं निवत्वोदानयन्ति यस्मिन्त्सर्वाणि-रूपाणि  
भवन्ति यो वा जव समृद्धः सहस्रा ह्यं पूर्वं यो दक्षिणायां धुर्यप्रतिधुरः।१॥

जव पूषा के लिये आहुति दी जा रही है, उस समय घोड़े को नहला कर  
लाते हैं। ऐसे घोड़े को जो सब रूपों (रंगों) से सम्पन्न है। जो गति वाला है।  
जो युवा है। जो सहस्र गायों के बराबर मोल में है, दाहिने धुरे के  
नीचे जिसकी बराबरी और कोई घोड़ा बढ़ा कर सकता (अर्थात् घोड़ा अत्युत्तम होता  
चाहिये ॥१॥



( ५९ )

तद्यत्सर्वरूपो भवति । सर्वं वै रूपं सर्वमश्वमेधः सर्वस्याप्त्यै  
 सर्वस्यावरुद्ध्याऽथ यज्जवसमृद्धो वीर्यं वै जवो वीर्यस्याप्त्यै वीर्यस्यावरु-  
 द्ध्याऽथ यत्सहस्राहः सर्वं वै सहस्रं सर्वमश्वमेधः सर्वस्याप्त्यै सर्वस्या-  
 वरुद्ध्याऽथ यत्पूर्व्यऽएष वाऽअपरिमितं वीर्यमभिवर्धते यत्पूर्व्योऽपरि-  
 मितस्यैव वीर्यस्यवरुद्ध्याऽथ यद्वक्षिणायां धुर्यप्रति धुरऽएष वाऽएष  
 यऽएष तपति न वाऽएत कश्चन प्रति प्रति रेतस्यैवावरुद्ध्यै ॥२॥

सब रूपों से सम्पन्न क्यों ? रूप "सब कुछ" है । अश्वमेध सब कुछ है । "सब  
 की उपलब्धि के लिये । "सब" की प्राप्ति के लिये । गति वाला क्यों ? गति पराक्रम  
 है । पराक्रम की उपलब्धि तथा प्राप्ति के लिए । सहस्र गायों के बराबर मोल  
 क्यों ? सहस्र "सब" है । अश्वमेध "सब" है सबकी उपलब्धि के लिये । "युवा"  
 क्यों ? जो युवा है, उसमें बहुत वीर्य होता है । बहुत वीर्य की प्राप्ति के लिये । दाहिने  
 धुरे के नीचे अप्रति धुर क्यों ? यह उसकी प्राप्ति के लिये जो की तपता है । (सूर्य),  
 क्योंकि सूर्य ऐसा घोड़ा है जिसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता ॥२॥

तदु होवाच भाल्लवेयः । द्विरूपऽएवैषोऽश्वः स्यात्कृष्ण सारङ्गः  
 प्रजापतेर्वाऽएषोऽक्षणः समभवद्द्विरूपं वाऽइदं चक्षुः शुक्लं चैव कृष्णं च  
 तदेनं स्वेन रूपेण समर्धयतीति ॥३॥

भाल्लवेय का कथन था कि यह घोड़ा दो रंग का होना चाहिये । चितकबरा ।  
 यह प्रजापति की आंख से उत्पन्न हुआ था । आंख में दो रंग होते हैं—कृष्ण और  
 श्वेत । इस प्रकार इसको इसी के रूप से सम्पन्न करता है ॥३॥

अथ होवाच सात्य यज्ञिः । त्रिरूपऽएवैषोऽश्वः स्यात्तस्य कृष्णः  
 पूर्वार्धः शुक्लोऽपरार्धः कृत्तिकाञ्जिः पुरस्तात्तद्यत्कृष्णः पूर्वार्धो भवति  
 यदेवेदं कृष्णमक्षणस्तदस्य तदथ यच्छुक्लोऽपराधो वदेवेदं शुक्लमक्षण-  
 स्तदस्य तदथ यत्कृत्तिकाञ्जिः पुरस्तात्सा कनीनका सऽएव रूपसमृद्धोऽतो  
 यतमोऽस्योप कल्पेत बहुरूपो वा द्विरूपो वाचिरूपो वा कृत्तिकाञ्जि-  
 स्तमालभेत जवेन त्वेव समृद्धः स्यात् ॥४॥

सात्य यज्ञी का कहना था कि यह अश्व तीन रंग का हो । अगला आधा भाग  
 कृष्ण, पिछला आधा शुक्ल, माथे पर कृत्तिका (गाड़ी) का चिन्ह । अगला आधा  
 कृष्ण इसलिये कि यह आंख के काले भाग का स्थानीय है । श्वेत इसलिये कि यह  
 आंख के श्वेत भाग का स्थानीय है । कृत्तिका का चिन्ह इस लिये कि यह आंख की  
 पुतली का स्थानीय है । यह घोड़े का पूरा रूप है । परन्तु जैसा मिले ले लेना चाहिये,  
 बहुरूप हो या द्विरूप या त्रिरूप । कृत्तिका के चिन्ह वाला । परन्तु गति में अवश्य  
 ही बहुत ही अच्छा होना चाहिये ॥४॥



तस्यैते पुरस्ताद्रक्षितारऽउपक्लृप्ता भवन्ति । राजपुत्राः कवचिनः शतं राजन्या निषङ्गिणः शतं सूतग्रामण्यां पुत्राऽइषुपर्विणः शतं क्षाल संगृहीतृणां पुत्राः दण्डिनः शतमश्वशतं निरष्टं निरमणं यस्मिन्नेनमपिसृज्य रक्षन्ति ॥५॥

यज्ञशाला के आगे इसके रक्षक तैयार रहते हैं । राजपुत्र, कवचधारी, सौ क्षत्रिय, तलवार लिए, सौ ग्राम वालों के पुत्र तीरों से भरे हुये तरकशों को लिये हुये, क्षत्रियों के साथियों के सौ गांव वालों के पुत्र डण्डे लिए । सौ निरष्ट घोड़े, इनमें उस अश्व को छोड़ देते हैं और उसकी रक्षा करते हैं । निरष्ट घोड़ों के एक चिन्ह होता है जो तीन साल की आयु बताता है । ऐसे आठ चिन्ह पड़ते हैं । इनको "अष्ट" कहते हैं । निरष्ट वह घोड़ा है जो आठ चिन्हों अर्थात् २४ वर्ष से बढ़ गया हो । बूढ़ा । ५।

अथ सावित्रीमिष्टिं निर्वपति । सवित्रे प्रसवित्रे द्वादश कपालं पुरोडाशं सविता वैप्रसविता सविता मऽइमं यज्ञं प्रसुवादिति ॥६॥

अब सविता की इष्टि करता है । सविता प्रसविता के लिये । बारह कपालों का पुरोडाश । सविता प्रेरक है अर्थात् सविता मेरे इस यज्ञ की प्रेरणा करे ॥६॥

तस्यै पंचदश सामिधेन्यो भवन्ति । वार्त्रघ्नावाज्यभागौ य ऽ इमा विश्वा जातान्या देवो यातु सविता सुरत्न ऽ इत्युपां शु हविषो यज्या जु वाक्ये विराजौ संयाज्ये हिरण्यं दक्षिणा सुवर्णं शतमानं तस्योक्तं ब्राह्मणम् ॥७॥

(१) य इमा विश्वा जातानि

ऋ० ५/८२/९

(२) आ देवो यावु सविता सुरत्न

ऋ० ७/४५/१

हवि को याज्य और अनु वाक्य को चुपके-चुपके पढ़ते हैं । दो संयाज विराद छन्द में होते हैं । दक्षिणा में सौ मन सोना । इसकी व्याख्या बताई जा चुकी है ॥७॥

तस्यै प्रयाजेषु तायमानेषु । ब्राह्मणो वीणागाथी दक्षिणतऽउत्तर मन्द्रा-मुदाघ्नंस्तिस्र, स्वयं संभृता गाथा गायतीत्ययजतेत्य ददादिति तस्योक्तं ब्राह्मणम् ॥८॥

जब इस इष्टि के प्रयाज हो रहे हों, उस समय एक वीणा बजाने वाला ब्राह्मण उत्तर मन्द्रा गति बजाकर तीन गीत गाता है । जिनका विषय यह होता है, इसने इतना यज्ञ किया किया । इसने इतना दान दिया" । इसका रहस्य बताया जा चुका है ॥८॥



( ६१ )

अथ द्वितीयां निर्वपति । सवित्रऽआसवित्रे द्वादश कपालं पुरोडाश  
 ° सविता वा ऽ आसविता सविता म ऽ इमं यज्ञमासुवादिति ॥९॥

अब दूसरी आहुति देता है “सविता आसविता” के लिए । बाहर कपालों का पुरोडाश । सविता “आसविता” है । इस लिए कि सविता देव हमारे यज्ञ में प्रेरणा करे ॥९॥

तस्यै सप्तदश सामिधेन्यो भवन्ति । सद्यन्तावाज्यभागी सदेवावरुन्दे विश्वानि देव सवितः सद्या नो देवः सविता सहावेत्युपां शु हविषो याज्या ऽनुवाक्ये ऽ अनुष्टुभौ संयाज्ये रजत ° हिरण्यं दक्षिणा नाना रूपतायाऽ प्रथोऽ उत् क्रमायानयक्रमाय शतमानं भवति शतायुर्वै पुरुषः शतेन्द्रियऽ आयुरेवेन्द्रियं वीर्यमात्मन्धत्ते ॥१०॥

इसकी सामिधेनियाँ सत्रह होती हैं । दो आज्य भाग “सत्” शब्द वाले होते हैं । “सत्” की प्राप्ति के लिए ।

(१) विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नासुव०

(२) स द्या नो देवः सविता.....

याज्य और अनु-वाक्य चुपके चुपके पढ़े जाते हैं । दोनों संयाज्य अनुष्टुप् छन्द में होते हैं । दक्षिणा चाँदी की होती है । नाना रूपता के लिये, इसलिये भी कि घोड़ा आगे को चले, भाग न जाय । यह चाँदी सौ मान भर होती है । पुरुष की आयु सौ वर्ष की है । आयु में भी पराक्रम होते हैं । इस प्रकार अपने में वीर्य या पराक्रम की स्थापना करता है ॥१०॥

तस्यै प्रयाजेषु तायमानेषु ॥ ब्राह्मणो वीणा० ॥११॥

जब प्रयाज हो रहे हों, उस समय वीणा बजाने वाला ब्राह्मण.....॥११॥

अथ तृतीयां निर्वपति । सवित्रे सत्य प्रसवाय द्वादश कपालं पुरोडाशमेष ह वै सत्यः प्रसवो यः सवितुः सत्येन में प्रसवेनेमं यज्ञं प्रसु-वादिति ॥१२॥

अब तीसरी आहुति “सविता सत्य प्रसव” के लिये । बारह कपालों का पुरोडाश । यह सविता सत्य प्रसव” है । वह मेरे इस यज्ञ की “सत्य प्रसव” शक्ति द्वारा प्रेरणा करे । इस लिये ॥१२॥

तस्यै सप्तदशैव सामिधेन्यो भवन्ति । रयिमन्ता वाज्यभागी वीर्यं वै रयिर्वीर्यस्याप्यै वीर्यस्यावरुद्ध्याऽआ विश्व देव ° सत्पति न प्रमिये



सवितुर्देव्यस्यतदिव्युपा ३ शु हविषो याज्याऽनुवाक्ये नित्ये संयाज्ये नेद्यज्ञ-  
पथा दयानीति क्लृप्त ऽएव यज्ञेऽन्ततः प्रतितिष्ठति त्रिष्टुभौ भवतः  
इन्द्रियं वै वीर्यं त्रिष्टुविन्द्रियस्यैव वीर्यस्यावरुद्ध्यै हिरण्यं दक्षिणा सुवशं  
३ शतमानं तस्योक्तं ब्राह्मणम् ॥१३॥

उसकी सत्रह समिधेनियाँ होती हैं । दो आन्ध-भाग “रचि” शब्द वाले होते हैं । “रयि” पराक्रम है । वीर्य की उपलब्धि, वीर्य की प्राप्ति के लिये ।

(१) आ विश्वदेवं सत्यति

ऋ०/१/८२/६।

(२) नमिये सवितुर्देव्यस्य

ऋ०४/५४/४।

यह याज्य और अनुवाक्य चुपके चुपके पढ़े जाते हैं । संयाज्य नित्य के मंत्र ही होते हैं । ऐसा समझकर कि कहीं मैं-यज्ञ के पथ से डिग न जाऊँ । इस प्रकार अपने को यज्ञ में प्रतिष्ठित करता है । ये त्रिष्टुप् छन्द में होते हैं । त्रिष्टुप् पराक्रम और वीर्य है । वीर्य और पराक्रम की उपलब्धि के लिये । दक्षिणा सौ मान भर सोना । इसका रहस्य जताया जा चुका है ॥१३॥

तस्यै प्रयाजेयु । ब्राह्मणो वीणा० ॥१४॥

जब प्रयाज हो रहेहों उस समय वीणा बजाने वाला ब्राह्मण.....१४ ॥

एतस्या ३ संस्थितायाम् । उपोत्थायाध्वर्युश्च यजमानश्चाश्वस्य दक्षिणे कर्णऽआजयतो विभूर्मात्राप्रभूः पित्रैति तस्योक्तं ब्राह्मणमर्थनमुदञ्चं प्राञ्च प्रसृजतऽएषा होमयेषां देव मनुष्याणां दिव्यदुदीची प्राची स्वाया-  
मेवैनं तद्दिशि घत्तो न वै स्व ऽ आयतनेप्रतिष्ठितो रिष्यत्यरिष्ट्यै ॥१५॥

विभूर्मात्रा प्रभू पित्राश्व.....

(यजु, २२/१९)

इसकी व्याख्या हो चुकी है । अब उसकी उत्तर-पूर्व में छोड़ देते हैं क्योंकि यह दिशा देव और मनुष्य दोनों की है । इस प्रकार वह इसकी इसी की दिशा में स्थापित करता है । जिससे उसकी छति न हो । जो अपने घर में रहता है । उसे हानि नहीं होती ॥१५॥

स ऽ आह देवाऽ आशा पालाः । एत देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितं, रक्षते त्युक्ता मानुषाऽ आशापालाऽ अथैते देवाऽ आप्याः सांघ्याऽ अन्वाघ्या मरुतस्तमेतऽउभये देव मनुष्याः संविदानाऽ अप्रत्पा वर्तयन्त संवत्सरं, रक्षन्ति तद्य न प्रत्यावर्तयन्त्येष वाऽएष यऽएष तयति कऽउ ह्येतं मर्हति प्रत्यावर्तयितुं युद्ध्यैनं प्रत्यावर्तयेयुः परागेवेद ३ सर्वं स्यात्तस्मादप्रत्यावर्तं, रक्षन्ति ॥१६॥



( ६३ )

यह कहता है, हे दिशाओं के रक्षक देव ! देवों के लिये पवित्र किये हुए इस घोड़े की रक्षा करो । दिशाओं के (चार) मानुषी रक्षक तो बता दिये गये । अब इन दिशाओं के चार देव रक्षकों को बताते हैं :—आप्य, साध्य, अन्वाध्य, और मस्त । ये मनुष्य और देव दिशाओं के रक्षक एकचित्त होकर बिना पीछे को मुख मोड़े हुए एक वर्ष तक उसकी रक्षा करते हैं ? पीछे को मुख क्यों नहीं मोड़ते ? यह जो सयं चमकता है, उसका मुख कौन मोड़ सकता है । यदि वह मुख मोड़े तो कुछ पीछे को मुड़ जाय । इसलिए वे बिना मुँह मोड़े रक्षा करते हैं ॥१६॥

सऽआहाशापालः । ये वाऽएतस्योद्भूत गमिष्यन्ति राष्ट्रं ते भविष्यन्ति राजानो भविष्यन्त्यभिषेचनीयाऽअथ यऽतस्योद्भूतं न गमिष्यन्त्यराष्ट्रं ते भविष्यन्त्यराजानो भविष्यन्ति राजन्या विशोऽनभिषेचनीयास्तस्मान्मा प्रमदत स्नात्वाच्चैवैनमुदकान्निरुन्धीध्वं वडवाभ्यश्च ते यघाद् ब्रह्मणजातमुपनिगच्छेत तत्तत्पृच्छेत ब्रह्मणाः कियधूयमश्वमेधस्य वित्येति ते ये न विद्ध्युर्जिनीयात तान्सर्वं वाऽअश्वमेधः सर्वस्यैष न वेद यो ब्राह्मणः सन्नश्वमेधस्य न वेद सोऽब्राह्मणो ज्येमऽएव स पानं करवाथ खादं निवपाथाथ यत्किं च जनपदेऽकृता न्न सर्वं वस्तत्सुतं तेषां रथकार कुलऽएव वो वसति स्तद्ध्यश्वत्यायतनमिति ॥१७॥

ब्राह्मणम् ॥१५॥ [४.२] द्वितीय प्रपाठकः कण्डिका संख्या ॥१७॥

वह कहता है हे दिशाओं के रक्षको ? जो इस यज्ञ के अन्त तक जायेंगे वे राष्ट्रीय तथा राजा हो जायेंगे और उनका अभिषेक होगा । जो इसके अन्त तक नहीं जायेंगे, वे राष्ट्र रहित हो जायेंगे । राजा न होंगे, साधारण क्षत्रिय या वैश्य होंगे, अभिषेक के योग्य न होंगे । इसलिए प्रमाद न करना । इसको स्नान के योग्य जल तथा घोड़ियों से बचाये रखना । यदि मार्ग में कोई ब्राह्मण मिले तो उनसे पूछना कि तुम अश्वमेध के विषय में जानते हो ? यदि वे न जानते हों तो उनका तिरस्कार करना । क्योंकि अश्वमेध "सब कुछ है । वे "सब कुछ" के विषय में नहीं जानते । जो ब्राह्मण होता हुआ अश्वमेध के विषय में नहीं जानता, वह अब्राह्मण है, निन्दनीय है । इस घोड़े को जल पिलाना, चारा, घास, आदि खिलाना । देश में जो अन्न या खाने की वस्तुयें होंगी सब कुछ तुमको प्राप्त होंगी । तुम रथकार के कुल में ही रहोगे, क्योंकि रथकार ही घोड़े का घर है ॥ ७ ॥

ब्राह्मण ॥१५॥ (४.२) द्वितीय प्रपाठकः ॥

—( ० )—



## ब्राह्मण ३

सावित्र्य इष्टयः, पारिप्लवाशंसनादि च निरूप्यन्ते-२

प्रमुच्याश्वं दक्षिणेन वेदिं । हिरण्मयं कशिपूपस्तृणाति तस्मिन्होतोष  
विशति दक्षिणेन हितारं, होरणमये कूर्चं यजमानो दक्षिणतो ब्रह्मा  
चोद्गाता च हिरण्मयोः कशिपुनोः पुरस्तात्प्रत्यङ्ङध्वयुर्हिरण्मये वा  
कूर्चं हिरण्मये वा फलके ॥१॥

घोड़े को छोड़कर अध्वर्यु वेदी की दक्षिण ओर एक जरी की दरी बिछाता  
है । होता उस पर बैठता है । होता की दाहिनी ओर सोने की तिपाई पर यजमान  
बैठता है । उसकी दाहिनी ओर जरी की दो दरियों पर ब्रह्मा और उद्गाता । उनके  
सामने सोने के स्टूल या पट्टे पर अध्वर्यु ॥१॥

समुप विष्टेष्वध्वर्युः सम्प्रेष्यति । होतभूतान्याचक्ष्व भूतेष्विमं  
यजमानमध्यूहेति सम्प्रेषितो होता ऽध्वर्युमामन्त्रयते पारिप्लवमाख्यान-  
माख्यास्यन्नध्वर्यविति हवै होतरित्यध्वर्युः ॥२॥

जब सब बैठ जाते हैं तो अध्वर्यु आदेश देता है होता ! भूतों (जीवों को  
गिन और इस यजमान को भूतों (जीवों) के ऊपर गिन" यह आदेश पाकर होता  
पारिप्लव आख्यान को कहता हुआ अध्वर्यु को सम्बोधित करता है "अध्वर्यु"  
अध्वर्यु कहता है "हाँ होता ?" ॥२॥

मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह । तस्य मनुष्या विशस्त इम ऽआसतऽइत्य  
श्रोत्रिया गृहमेधिनऽउपसमेता भवन्ति तानुपदिशत्यृचो वेदः सोऽयमित्युचां  
सूक्तं व्याचक्षाण-ऽइवानुद्रवेद्वीणागणगिनऽ उपसमेता भवन्ति तानध्वर्युः  
सम्प्रेष्यति वीणागणगिनऽइत्याह पुराणौरिमं यजमानं, राजभिः साधु  
कृद्भिः संगायेतति तं ते तथा संगायन्ति तद्यदेनमेवं संगायन्ति पुराणे-  
रेवैनं तद्राजभिः साधु कृद्भिः सलोकं कुर्वन्ति ॥३॥

होता कहता है, "मनुर्वैवस्वत राजा है । उसकी प्रजा मनुष्य है । वे यहाँ  
उपस्थित हैं अश्रोत्रिय गृहस्थ इकट्ठे हो जाते हैं । उनके सम्बोधन करके कहता है"  
यह वेदी की ऋचा है" इस प्रकार एक वेद का सूक्त पढ़ता है । तभी वीणा बजाने  
वाले इकट्ठे हो जाते हैं । अध्वर्यु उन वीणा बजाने वालों से कहता है, "पिछले  
पुण्यात्मा राजाओं के साथ यजमान के यश का भी गान करो ।" वे इसी प्रकार से  
गान करते हैं । इस प्रकार गान करने से वह पुराने पुण्यात्मा राजाओं के साथ  
यजमान को सलोकता प्राप्त करा देता है ॥३॥



( ६५ )

सम्प्रेष्याध्वयुः प्रक्रमान्जुहोति । अन्वाहार्यपचने वाऽश्वस्य वा पदं परिलिख्य यतरथाऽस्य तत्रावृद् भवति पूर्वा त्वेव स्थितिः ॥४॥

इस प्रेरणा के पश्चात् अध्वयु "प्रक्रम" आहुतियों को देता है या तो अन्वाहार्यपचन में या घोड़े के पैर के चिन्ह में चारों ओर से लकीर खींचकर । जैसी परिपाटी हो उनके अनुसार । परन्तु पहली परिपाटी अधिक प्रचलित है ॥४॥

सावित्र्याऽएवेष्टेः । पुरस्तादनुद्गत्य सकृदेव रूपाण्याहवनीये जुहोत्यथ सायं घृतिषु हूयमानासु राजन्यो वीणागाथो दक्षिणतऽउत्तरमन्द्रामुदाह्नं-स्तिस्रः स्वयं, सम्भृता गाथा गायतीत्य युध्यतेत्यमुं, संग्रामम् अजयदिति ब्राह्मणम् ॥५॥

सविता की इष्टि की पहली आहुति देने से पूर्व शीघ्र-शीघ्र मन्त्र पढ़कर एक बार साहवनीय में "रूप" नामी आहुतियाँ देता है । सायंकाल को "घृति" नामक आहुतियाँ देने के समय क्षत्रिय वीणा वाला, दक्षिण की ओर उत्तर मंद्रालय को बजाता हुआ अपनी बनाई हुई तीन गाथायें (गीतियाँ) गाता है । "यह युद्ध इसने किया, यह संग्राम इसने जीता" आदि विषय पर । इसकी व्याख्या हो चुकी है ॥५॥

अथ श्वोभूते द्वितीयेऽहन् । एवमेवैतासु सावित्रीष्टिषु स स्थिता-स्वेषैवावृद्ध्वर्यविति ह वै होतरित्येवाध्वयुर्यमो वैवस्वतो राजेत्याह तस्य पितरो विशस्तऽइमऽआसतऽइति स्थविराऽउपसमेता भवन्ति तानुपदिशति यजुषि वेदः सोऽयमिति यजुषामनुवाकं व्याचक्षाण-ऽइवानुद्रवेदे वमेवाध्वयुः सम्प्रेष्यति न प्रक्रमान्जुहोति ॥६॥

दूसरे दिन प्रातःकाल जब इसी प्रकार से सविता को तीन इष्टियाँ दी जा चुकीं तो वही कार्य होता है । होता १ अध्वयु कहता है, हे अध्वयु कहता है हाँ, होता ।" होता कहता है "यम वैवस्वत । उसकी प्रजा पितर है । वे यहाँ उपस्थित है ।" स्थविर (वृद्ध) पुरुष आते हैं, उन्हीं को आदेश करता है, "यजुःवेद है । वह यह है" यजु के अनुवाक का पाठ करता है । अध्वयु (वीणा बजाने वाले को) उसी प्रकार आदेश करता है, परन्तु "प्रक्रम" आहुतियाँ नहीं देता ॥६॥

अथ तृतीयेऽहन् । एवमेवैतास्विष्टिषु स स्थितास्वेषैवावृद्ध्वर्यविति ह वै होतरित्येवाध्वयुर्वरुणऽआदित्यो राजेत्याह तस्य गन्धर्वा विशस्तऽइमऽआसतऽइति युवानः शोभनाऽउपसमेता भवन्ति



तानुपदिशत्यथर्वाणो वेदः सोऽयमित्यथर्वणामेकं पर्व व्यात्रक्षाणऽ इवानुद्रवेदेव मेवाध्वर्युः सम्प्रेष्यति न प्रक्रमाञ्जुहोति ॥ १७॥

तीसरे दिन इन इष्टियों के हो जाने के पश्चात् वही कार्य होता है । होता कहते हैं “अध्वर्यु” । अध्वर्यु कहता है हाँ ! होता । होता कहता है, वरुण आदित्य राजा । उसकी प्रजा है गन्धर्व । ये यहाँ उपस्थित है ” । सुन्दर युवक इकट्ठे होते हैं । इन्हीं को आदेश देता है । “अथर्व वेद यह है” अथर्ववेद के एक पर्व का पार करता है अध्वर्यु इसी प्रकार आदेश देता है, परन्तु प्रक्रम आहुतियाँ नहीं देता ॥७॥

अथ चतुर्थेऽहन् । एवमेवैतास्विष्टिषु स ० स्थितास्वेषैवावृद्धव्यं विति ह वै होतरित्येवाध्वर्युः सोमो वैष्णवो राजेत्याह तस्याप्सरसो विशस्ताऽइमाऽ या सतऽहति युवतयः शोभनाऽ उप समेता भवन्ति ताऽउपदिशत्वाङ्गिरसो वेदः सोऽयमित्यङ्गिरसामेक पर्व व्याचक्षाणऽ इवानुद्रवेदेवमेवाध्वर्युः सम्प्रेष्यति न प्रक्रमाञ्जुहोति ॥८॥

चौथे दिन इन इष्टियों के समाप्त होने पर वही कार्य होता है । होता कहता है अध्वर्यु । अध्वर्यु कहता है हाँ होता । होता कहता है, “सोम वैष्णव राजा । उसकी प्रजा हैं अप्सरायें, ये यहाँ उपस्थित हैं ।” सुन्दर युवतियाँ इकट्ठी होती हैं । उनको उपदेश देता है । अंगिरस वेद है । वह यह है । अङ्गिरसो का एक पर्व पढ़ता है.....इत्यादि ॥८॥

अथ पञ्चमेऽहन् । एवमेवैतास्विष्टिषु स ० स्थितास्वेषैवावृद्धव्यं विति ह वै होतरित्येवाध्वमुर्वुदः काद्रवेयो राजेत्याह तस्य सर्पा विशस्तऽ इमऽ आसतऽइति सपश्चि सर्पाविदश्चोप समेता भवन्ति तानुपदिशति सर्प विधा वेदः सोऽयमिति सर्प विद्याया ऽ एकं पर्व व्याचक्षाणऽ इवानुद्र० ॥९॥

पाँचवे दिन इष्टियों के समाप्त होने पर वही कार्य होता है । होता कहता है “अध्वर्यु” । अध्वर्यु कहता है हाँ होता ! होता कहता है, अर्बुद काद्रवेय राजा । इसकी प्रजा है सर्प । ये यहाँ उपस्थित है । सर्प और सर्पविद् उनको वह उपदेश करता है, “सर्प विद्या वेद है वह यह है” सर्पविद्या का एक पर्व पढ़ता है । इत्यादि ॥९॥

अथ षष्ठेऽहन् । एवमेवैतास्विष्टिषु स ० स्थिता स्वेषैवावृद्धव्यं विति ह वै होतरित्येवाध्वर्युः कुवेरो वैश्रवणो राजेत्याह तस्य रक्षाः सि विशस्तानीमान्यासतऽइति सेलगाः पापकृतऽउपसमेता भवन्ति



[ ६७ ]

तानुपदिशति देव जन विद्या वेदः सोऽयमिति देव जन विद्याया ऽ एकं पर्व व्याचक्षाणऽ इवा नुद्र० ॥१०॥

छठे दिन इन इष्टियों के समाप्त होने पर वही कार्य होता है "होता" कहता है "अध्वयु" ! "अध्वयु" कहता है "हाँ होता" होता कहता है "कुवेर वैश्रवण राजा । उसकी प्रजा है राक्षस । वे वहाँ उपस्थित हैं । डाकू पापी इकट्ठे होते हैं, इन्हीं को वह उपदेश देता है देव जन विद्या वेद है, वह यह है । देवजन विद्या के एक पर्व का पाठ करता है इत्यादि ॥१०॥

अथ सप्तमेऽहन् । एवमेवैता स्विष्टिषु स ० स्थिता स्वेषैवावृद्धव्यं विति ह वै होतरित्येवाध्वयु रसितो धान्वो राजेत्याह तस्या सुरा विशस्तऽ इमऽ आसतऽ इति कुसीदिनऽ उप समेता भवन्ति तानुपदिशति माया वेदः सोऽ यमिति काचिन्मायां कुर्यादेवमेवाध्वयु सम्प्रेष्यति न प्रक्रमाञ्जुहोति ॥ ११॥

सातवें दिन इन इष्टियों के समाप्त होने पर वही कार्य होता है । होता कहता है "अध्वयु" ! अध्वयु कहता है "हाँ होता" होता कहता है असित धान्वराजा इसकी प्रजा है असुर । ये यहाँ उपस्थित हैं । कुसीद या । व्याजखोर वहाँ आते हैं । उन्हीं को उपदेश देता हूँ । माया वेद है वह यह है ।" कुछ माया दिखावे । अध्वयु इसी प्रकार आदेश होता है, परन्तु प्रक्रम आहुति नहीं देता ॥११॥

अथाष्टमेऽहन् । एव मेवैतास्विष्टिषु स ० स्थिता स्वेषै वावृद्धव्यं विति ह वै होतरित्येवाध्वयुर्मत्स्यः सांमदो राजेत्याह तस्योदकेचरा विशस्तऽ इमऽ आसतऽ इति मत्स्याश्चमत्स्यहनश्च उपसमेता भवन्ति तानुपदिशति इतिहासो वेदः सोऽ यमिति कंचिदितिहासमाचक्षीतैव मेवाध्वयु सम्प्रेष्यति न प्रक्रमाञ्जुहोति ॥१२॥

आठवें दिन इन इष्टियों के समाप्त होने पर वही कार्य होता है । होता कहता है "अध्वयु"? अध्वयु कहता है, हाँ होता ?" होता कहता है, मत्स्य सांमद राजा । उसकी प्रजा है जल वासी । ये यहाँ उपस्थित हैं, मछली और मछलीगीर वहाँ आते हैं । उन्हीं को उपदेश देता है । इतिहास वेद है वह यह है ।" कुछ इतिहास सुनाता है । अध्वयु उसी प्रकार आदेश देता है, परन्तु प्रक्रम आहुति नहीं देता है ॥१२॥

अव नवमेऽहन् । एवमेवैतास्विष्टिषु स ० स्थितास्वेषैवावृद्धव्यं विति ह वै होतरित्येवाध्वयुस्ताक्ष्यौ वैपश्यतो राजेत्याह तस्य वयां ० सि विशस्तानीमान्यासतऽ इति वयां ० सि च वायो विधिकारचोपसमेता



भवन्ति तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति किञ्चित्पुराणमाचक्षीतैवे-  
वाध्वर्युः सम्प्रेष्यति न प्रक्रमाज्जुहोति ॥१३॥

नवें दिन इन इष्टियों के समाप्त होने पर वही कार्य होता है। होता कहता है “अध्वर्यु” ? अध्वर्यु कहता है, “हां होता ?” होता कहता है” ताक्यं वै पश्य राजा । उनकी प्रजा है पक्षी । वे यहाँ उपस्थित है । पक्षी और पक्षि विद्या विद् वह इकट्ठे होते हैं । उनको उपदेश करता है । “पुराण वेद हैं । वह यह है” । कुछ पुराण पढ़ता है । अध्वर्यु उसी प्रकार आदेश करता है । प्रक्रम आहुतियां नहीं देता है ॥१३॥

अथ दशमे ऽह्न । एवमेवैतास्विष्टिषु सँस्थितास्वेषैवा वृद्धध्वर्यविति हंवँ होतरित्येवाध्वुर्धर्मऽइन्द्रो राजेत्याह तस्य देवा विशस्तऽइमऽआसतऽइति श्रोत्रिया ऽअप्रतिग्राहका ऽउप समेता भवन्ति तानुपाजेशतिसामानि वेदः सो ऽयमिति साम्नादशतंब्रूयादेवमेवाध्वर्युः सम्प्रेष्यति न प्रक्रमाज्जुहोति इति ॥१४॥

दशवें दिन इन इष्टियों की समाप्ति पर वही कार्य होता है अध्वर्यु । अध्वर्युः कहता है “हां होता ।” होता कहता है, धर्म इन्द्र राजा । इसकी प्रजा देवा ये उपस्थित हैं । दान न लेने वाले श्रोत्रिय यहां इकट्ठे होते हैं । उन्हीं को उपदेश देता है । साम वेद है । वह यज्ञ है” । साम के दशत ( दस मंत्रों ) को पढ़े, अध्वर्यु उसी प्रकार उपदेश होता है प्रक्रम आहुतियां नहीं देता ॥१४॥

एतत्पारिप्लवम् । सर्वाणि राज्यान्याचष्टे सर्वाः विशः सर्वान्वेदान् सर्वान्देवान्त्सर्वाणि भूतानि सर्वेषाँ ह वै स ऽएतेषाँ राज्यानाँ सायुज्यं सलोकतामश्नुते सर्वासां विशामैश्वर्यमाधिपत्यं गच्छति सर्वान्वेदान् रुन्ध सर्वान्देवान्पीत्वा सर्वेषु भूतेष्वन्ततः प्रति तिष्ठति यस्यैवं विदेतद्धोता पारिप्लवमाख्यानमाचष्टे यो वैतदेववेदेतदेव समानमाख्यानं पुनः पुनः संवत्सरं परिप्लवते तद्यत्युनः— पुनः परिप्लवते तस्मात् पारिप्लव षट्त्रिंशतं दशाह्वानाचष्टे षट् त्रिंशदक्षरा बृहती बार्हताः पशवो बृहत्यैवास्मै पशूनवरुद्धे ॥१५॥

यह है पारिप्लव गाथा । सब राजाओं का नाम लेता है, सब प्रजाओं का, सब वेदों का, सब देवों का, सब भूतों का । वह यजमान सब राजाओं की सलोकता को प्राप्त होता है, सब प्रजाओं पर प्राधिपत्य प्राप्त करता है, सब वेदों की प्राप्ति करता है, सब देवों को प्रसन्न करके सब भूतों में प्रतिष्ठित होता है । जिसके लिए इस रहस्य जानने वाला होता पारिप्लव गाथा को कहता है । यह आख्यान साल भर



( ६९ )

तक बार बार आता है । इसलिए इसको पारिप्लव गाथा कहते हैं । दस दिनों के छत्तीस समूह तक वह कहता है (अर्थात् ३६० दिन तक) बृहद छन्द में ३६ अक्षर होते हैं । पशु बृहती है । बृहती के द्वारा वह उसको पशुओं से सम्पन्न करता है ॥१५॥

ब्राह्मणम् ॥१॥ [४,३]

ॐ०ॐ

## ब्राह्मण ४

### यूप काष्ठादि

संवत्सरे पर्यवेते दीक्षा । प्राजापत्यमालम्योत्सीदन्तीष्ट्य पुरोहित-  
स्याग्निषु यजेतेत्यु हैकऽ आहुः किमु दीक्षितो यजेत द्वादश दीक्षा  
द्वादशोपसदस्तिन्नः सुत्यास्ततृणवमिसम्पद्यते वज्रो वैत्रिणवः क्षत्रमश्वः  
क्षत्रं राजन्यो वज्रेण खलु वै क्षत्रं स्पृतं तद्वज्रेणैव क्षत्रं स्पृणोति ॥१॥

संवत्सर की समाप्ति पर दीक्षा होती है । प्राजापत्य पशु के आलमन के उपरान्त इष्टियां समाप्त हो जाती है । कुछ की राय है कि पुरोहित को अग्नियों में आहुतियां देनी चाहिये । दीक्षित क्यों आहुतियां दे ? बारह दिन दीक्षा के होते हैं, बारह उपसदों के और तीन सुत्य (सोम निचोड़ने) के । इस प्रकार ९ के तिगुने अर्थात् २७ स्तोम हो गये । परन्तु ९ का तिगुना वज्र है । अश्व क्षत्र है । क्षत्र राजा है । वज्र से ही राज जीता जाता है । वज्र से ही क्षत्र को जीतता है ॥१॥

दीक्षणीयायां हं स्थितायाम् । सायं वाचि विसृष्टायां वीणागण  
गिनऽउपसमेता भवन्ति तानध्वर्युः सम्प्रेष्यति वीणागणगिनऽइत्याह देवै  
रिमं यजमानं संगायतेति तं ते तथा संगायन्ति ॥२॥

जब दीक्षा समाप्त हो जाय और सायंकाल की वाक् विमोचन हो जाय, तब वीणा वाले इकट्ठे हो जाते हैं । अध्वर्यु प्रेरणा करता है वह कहता है 'हे वीणा वाले ? देवों के साथ इस यजमान का भी यज्ञ गाओ ।' तब वे गाते हैं ॥२॥

अहरहर्वीचि विसृष्टायाम् । अग्नीषोमीयानामन्ततः संस्थायां  
पारिहृतासु वस्तीवरीषु तद्यदेनं देवैः संगायन्ति देवैरेवैनं तत्सलोकं  
कुर्वन्ति ॥३॥

प्रति दिन वाक्-विमोचन के उपरान्त अग्नीषोमीय इष्टि की समाप्ति पर वस्तीवरी जलों के चारों ओर घुमाने के पश्चात् (वे गाते हैं) इनके देवों के साथ गाने का प्रयोजन यह है कि उस (यजमान) को देवों की सलोकता प्राप्त कराते हैं ॥३॥



प्रजापतिना सुत्यासु । एव मेवाहरहः परिहृतास्वेव वसतां  
वरोषूदव सानी यायामन्ततः स ँ स्थितायां तद्यदेनं प्रजापतिना  
गायन्ति प्रजापति नै वैनं तदन्ततः स लोकं कुर्वन्ति ॥४॥

सुख्य दिनों में वसतीवरी जलों के घुमाने तथा उद वसानीय की समाप्ति के  
पश्चात् प्रतिदिन प्रजायति के साथ (वे गान करते हैं) । प्रजापति के साथ गान  
करने का प्रयोजन यह है कि यजमान की प्रजापति की सलोकता प्राप्त कराते हैं ॥४॥

एक वि ँ शतियूयाः । सर्वऽएक वि ँ शत्यरत्नयो राज्जुदालोऽ  
ग्निष्ठो भवति पैतुदार वावमितः षड् बैल्वास्त्रय ऽइत्थात्षट् खादि-  
रास्त्रयऽएवेत्थात्त्रयऽ इत्वात्षट् पालाशास्त्रय ऽएवेत्थात्त्रयऽइत्थात् ॥५॥

यूप इक्कीस होते हैं । इक्कीस हाथ लम्बे । अग्निष्ठ यूप (अर्थात् आहुवनीय  
के सामने का बीच का) रज्जुदान लकड़ी का होता है । उसके दोनों ओर दो  
पीतदार के, छः धिल्व के अर्थात् तीन इघर, तीन उघर, छः खदिर के अर्थात् तीन  
इघर, तीन उघर, छः पालाश के अर्थात् तीन इघर उघर ॥५॥

तद्यदेतऽएवं यूपा भवन्ति । प्रजापतेः प्राणोषूत्क्रान्तेषु शरीरं  
श्वयितुमघ्नियत तस्य यः श्लेष्माऽऽसीत् ससाधे ँ समवद्रुत्य मध्यतो  
नस्त उदभिनत्सऽएष वनस्पतिरभवद् रज्जु दालस्तस्मात्स श्लेष्मणः  
श्लेष्मणो हि समभवत्तेनैवैनं तद्रूपेण समर्धयति तद्यत्सोऽग्निष्ठो भवति  
मध्यं वाऽएतधूपानां यदग्निष्ठो मध्यभेतत्प्राणानां यन्नासिके स्वऽएवैनं  
तदायतने दधाति ॥६॥

ये यूप ऐसे क्यों होते हैं ? जब प्रजापति के प्राण निकल गये, तो उसका  
शरीर सूज गया और उसमें जो श्लेष्म था वह वहकर नाक में होकर फूट निकला  
वह रज्जुदान वृक्ष हो गया । यह श्लेष्म है क्योंकि श्लेष्म से उत्पन्न हुआ । उसी  
रूप से वह इस यूप की समृद्धि करता है । इसको अग्निष्ठ क्यों कहते हैं ? क्योंकि  
यह यूप के बीच का है । नाक प्राणों के बीच की (केन्द्र) है । इस प्रकार वह  
इसको अपने ही आयतन अर्थात् स्थान में स्थापित करता है । ॥६॥

अथ यदापोयमयं तेज ऽऽ आसीत् । यो गन्धः स सार्धं ँ समवद्रुत्य  
चक्षुष्टऽउदभिनत्सऽ एष वनस्पतिरभवत्पीतुदारुस्तस्मात्स सुरभिर्गन्धादि  
समभवत्तस्मादुज्ज्वलनस्तेजासो हि समभवत्तेनैवैनं तद्रूपेण समर्धयति  
तद्यत्तावभितोऽग्निष्ठं भवतस्तस्वादिमेऽ अभितो नासिको चक्षुषी स्वऽ  
एवैनो तदायतने दधाति ॥७॥

जो जलमय तेज तथा गन्ध था, वह साथ वहकर आँखों से फूट निकला ।



( ७१ )

उसका पीत दारु वृक्ष बन गया । इस लिये वह सुगन्ध युक्त है, क्योंकि सुगन्ध से से निकला । तेन से उत्पन्न हुआ इसलिए शीघ्रता से जलता है ज्वलन है । उसी रूप से उसको समन्वित करता है ये यूप अग्निष्ठ यूप के दोनों ओर होते हैं, इसलिये नाक की दोनों ओर आँखें हैं । उनको उन्हीं के स्थान में स्थापित करता है ॥७॥

अथ यत्कुन्तापमासीत् । यो मज्जा स सार्धं सम वद्रुत्य श्रीत्रतऽ उदभिनत्सऽएष वनस्पतिरभवद् बिल्वस्तस्मात्तस्यान्तरतः सर्वमेव फलमाद्यं भवति तस्मादु हारिद्रऽइव भवति हारिद्रऽइव हि मज्जा तेनैवैनं तद्रूपेण समर्धत्यन्तरे पैतुदारुवौ भवतो ब्राह्मे वैल्वाऽ अन्तरे हि चक्षुषी ब्राह्मे श्रोत्रे स्वऽ एवैनांस्तदायतने दधाति ॥८॥

वह जो कुन्ताप या सज्जा था वह साथ बहकर कानों में होकर फूटा, उसका बिल्व वृक्ष हुआ । इसलिए उसके भीतर का सभी फल (गूदा) खाने योग्य होता है । मज्जा पीला सा होता है इस लिये वह भी पीला है । इसको इसी के रूप में समृद्ध करता है । पीत दारु के यूप भीतर की और बिल्व के बाहर को होते हैं । क्योंकि आँखें भीतर को हैं और कान बाहर को । इस प्रकार उनको उन्हीं के स्थान में सम्पन्न करता है ॥८॥

अस्थिम्यऽएवास्य खदिरः समभवत् । तस्मात्स दारुणो बहुसारो दारुणमिव ह्यस्थि तेनैवैनं तद्रूपेण समर्धवत्यन्तरे बिल्वा भवन्ति बाह्ये खादिराऽअन्तेर हिमज्जानो बाह्यान्यस्थीनि स्वऽएवैनांस्तदायतने दधाति ॥९॥

उसकी हड्डियों से खदिर हुआ । इसलिये वह कड़ा होता है । हड्डी कड़ी और सार युक्त होती है । इस प्रकार इसी के रूप से समृद्ध करता है । बिल्व के यूप भीतर होते हैं, खदिर के बाहर को । मज्जा भीतर हड्डियाँ बाहर होते हैं । इस प्रकार इनको इन्हीं के स्थान में स्थापित करता है ॥९॥

मांसेम्यऽएवास्य पलाशः समभवत् । तस्मात्स बहुरसो लोहितरसो लोहितमिव हि मांसेतेनैवैनं तद्रूपेण समर्धयत्यन्तरे खादिरा भवन्ति बाह्ये पालाशाऽअन्तराणि ह्यस्थीनि बाह्यानि मांसानि स्वऽएवैनांस्तदायतने दधाति ॥१०॥

मांसो से पलाश हुआ । इसलिये उसमें बहुत रस हैं और लाल रस हैं । मांस लाल होता है । इसको इसी के रूप से समृद्ध करता है । भीतर खदिर के यूप होते हैं बाहर पलाश के । हड्डियाँ भीतर होती हैं मांस बाहर । इस प्रकार इनको इन्हीं के स्थान में स्थापित करता है ॥१०॥



अथ यदेक विंशतिर्भवन्ति । एक विंशत्य रत्नयऽएक विंशोवाऽएष  
यऽएष तपति द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रयऽइमे लोकाऽअसावादित्यऽ एक  
विंशः सोऽश्वमेघऽएष प्रजापतिरेव मेतं प्रजापतिं यज्ञं कृत्स्नं संस्कृत्य  
तस्मिन्नेक विंशतिमग्नी षोमीयान्पशूनालभते तेषां समानं कर्मत्वे-  
तत्पूर्वद्युः कर्म ॥११॥

ये इक्कीस क्यों होते हैं और इक्कीस हाथ लम्बे क्यों ? यह जो (सूर्य),  
तपता है । यह इक्कीस वाला होता है । बारह मास, पांच ऋतु, तीन लोक और  
इक्कीसवां आदित्य । वह अश्वमेघ है और प्रजापति भी । इस प्रकार यज्ञ प्रजापति  
को पूर्ण स्वस्थ करके उसमें २१ अग्निषोमीय पशुओं का आलम्भन करता है । इनके  
लिये कर्म समान है । यह पहले दिन का कार्य हुआ ॥

ब्राह्मणम् ॥२॥ [४४] इति चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥



## अध्याय ५

## ब्राह्मण १

सवनीयाः पशवः

अथ प्रातर्गोतमस्य<sup>१</sup>। चतुस्तर स्तोमो भवति तस्य चतसृषु बहिष्पव-  
मानमष्टास्वष्टास्वाज्यानि द्वादशसु माध्यन्दिनः पवमानः षोडशसु पृष्ठानि  
विंश्यामार्भवः पवमानश्चतुर्विंशत्यामग्निष्टोम साम ॥१॥

दूसरे दिन प्रातःकाल गोतम के स्तोम पढ़े जाते हैं, जो चार चार करके बढ़ते  
जाते हैं अर्थात् बहिष्पवमान में चार मन्त्र होते हैं। आज्य में आठ-आठ, माध्यन्दिन  
पवमान में बारह, पृष्ठ में सोलह, आर्भव पवमान में बीस, अग्निष्टोम साम में  
चौबीस ॥१॥

तस्य हैके। अग्निष्टोम साम चतुःसाम कुर्वन्ति नाग्निष्टोमो  
नोक्थ्यऽइति वदन्तस्तद्यदि तथा कुर्युः सार्धं स्तोत्रियं शस्त्वा सार्धमनुरूप  
शंसेद्रथन्तरं पृष्ठं रथन्तर शस्त्रमग्निष्टोमो यज्ञस्तेनेमं  
लोकमृध्नोति ॥२॥

कुछ अग्निष्टोम साम में चार मन्त्र करते हैं उनका कथन है कि यह न  
अग्निष्टोम है न उक्थ्य। यदि ऐसा करें तो (होता को चाहिए) कि स्तोत्रिय को  
साथ पढ़कर “अनुरूप” को साथ पढ़ें। रथन्तर पृष्ठ, रथन्तर वाला शस्त्र और  
अग्निष्टोमं यज्ञ, इससे इस लोक की प्राप्ति करता है ॥२॥

एक विंशतिः सवनीयाः पशवः। सर्वेऽआग्नेया स्तेषां  
समानं कर्मेत्युहैकऽआहुर्द्वेत्वेवैतऽएकादशिन्यावालभेत यऽएवैकादशिनेषु  
कामस्तस्य कामस्याप्त्यै ॥३॥

सवनीय पशु इक्कीस होते हैं। सब अग्नि के। कुछ कहते हैं कि उनका कर्म एक  
सा ही है। परन्तु ग्यारह-ग्यारह के दो समूहों का आलभन (स्तुति) करना चाहिये।  
“ग्यारह” वालों में जो कामना पूरी हो सकती है, उसकी पूर्ति के लिए ॥३॥

संस्थितेऽग्निष्टोमे। परिहृतासु वसतीवरीष्वध्वयुरन्न होमा-  
ञ्जुहोति तेषामुक्तं ब्राह्मणंप्राणाय स्वाहाज्यानाय स्वाहेति द्वादशभि  
रनुवाकैर्द्वादश मासाः संवत्सरः सर्वे संवत्सरः सर्वमश्वमेघः सर्वयाप्त्यै  
सर्वस्वायवरुद्ध्यै ॥४॥



( ७४ )

अग्निष्टोम के समाप्त होने और वसतीवरी के घुमाने पर अध्वर्यु "अग्निहोम" की आहुतियाँ देता है। इसका रहस्य बताया जा चुका है। "प्रणाय स्वाहा" "अपानाय स्वाहा" आदि बारह। ( यजु० २२/२३/२४ ) अनुवाक्यों से आहुतियाँ देता है, संवत्सर में बारह मास होते हैं। संवत्सर सब कुछ है। अश्वमेघ सबको उपलब्धि के लिये। सब कुछ है। सबकी प्राप्ति के लिये ॥ ४ ॥

एक विंशं मध्यममहर्भवति । असौऽवाऽ आदित्यऽ एक विंशः सोऽश्वमेघः स्वेनेवैनं स्तोमेन स्वायां देवतायां प्रतिष्ठापयति तस्मादेक विंशम् ॥५॥

मध्य का दिन 'एकविंश' है। यह आदित्य "एकविंश" है। वह अश्वमेघ है। इसकी इसीके स्तोम से इसी के देवतामें प्रतिष्ठित करता है, इसलिए यह "एक विंश" है ॥ ५ ॥

यद्वैक विंशम् एक विंशो वै पुरुषो दश हयाऽअङ्गुलयो दश पाद्या आत्मैक विंशस्तदने नैक विंशेनात्मनेतस्मिन्नैक विंशे प्रतिष्ठायां प्रतितिष्ठति तस्मादेक विंशम् ॥६॥

एक विंश क्यों ? पुरुष एक विंश ( इक्कीस ) है। दश हाथ की उंगलियाँ, दस पैर की, एक आत्मा। इस एक विंश आत्मा द्वारा इस एक विंश प्रतिष्ठा में उसको प्रतिष्ठित करता है। इसलिए "एक विंश" होता है ॥ ६ ॥

यद्वैकविंशम् । एक विंशो वै स्तोमानां प्रतिष्ठा बहु खलु वाऽ एतदेतस्मिन्नहन्त्युच्चा व वमिव कर्म क्रियते रद्यदेत देतस्मिन्नहन्त्युच्चावचं बहु कर्म क्रियते तदेतस्मिन्नेक विंशे प्रतिष्ठायां प्रतितिष्ठति क्रियाताऽइति तस्माद्वैतदेक विंशमहः ॥७॥

इसलिए भी "एकविंश" है कि स्तोमों की प्रतिष्ठा "एक विंश" है। उस दिन जो उच्चावच (ऊँचा-नीचा) कर्म किया जाता है, वह "बहु" बहुत है, वह सोचता है कि इस दिन जो "उच्चावच" वह कर्म किया जाता है, वह इसी एकविंश प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित होगा। इसलिये यह "एक विंश" दिन है ॥ ७ ॥

तस्य प्रातः सवनम् । अग्निं तं मन्ये यो वसुरिति होता पाङ्क्तमाज्यं शस्त्वैकाहिकमुपसंशंसति बार्हतं च प्रऽउगं मधुच्छन्दसं च त्रिचशऽउभे संशंसति यश्च बार्हते प्रऽउगे कामो यऽ उ च माधुच्छन्दसे तयो रूभयोः कामयोराप्त्यै क्लृप्तं प्रातः सवनम् ॥८॥



( ७५ )

इसके प्रातः सवन के विषय में यह है कि :—

ओं अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः । अस्तमर्वन्त  
आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ( ऋ० ५/१/६  
पूरा सूक्त)

होता इस पक्ति छन्द वाले आज्य को पढ़कर एक दिन के आज्य सूक्त को ओं प्र वो देवायामन्ये वर्ष्णि मर्चास्मै । गमद्देवेभिरास नो मजिष्ठो वर्हिरा मदत् । इत्यादि सूक्त को पढ़ता है । बार्हत प्र उ ग और माधुच्छन्दस को तीन तीन मंत्र करके साथ-साथ पढ़ता है । उस कामना की प्राप्ति के लिये जो बार्हत प्र उ ग और माधुच्छन्दस से प्राप्त हो सकती है । प्राप्तःसवन इस प्रकार ठीक हुआ ॥८॥

अथातो माध्यन्दिनं सवनम् । अतिच्छन्दाः प्रति-पन्मरुत्वतीयस्य  
त्रि ऋदुकेषु महिषो यवाशिर मित्य तिष्ठा वाऽएषा छन्दसां यदतिच्छन्दाऽऽ  
अतिष्ठा अध्यमेधो य ज्ञानामश्वमेधस्यै वाप्त्यै सैषैव त्रिः शस्ता त्रिचः  
सम्पद्यते तेनो तं काममाप्नोति यस्त्रिच ऽ इदं वसो सुतमन्धऽइत्यनुचरु  
एषऽ एव नित्यऽ एका हातान ऽइत्या हि सोमऽइन्मदेऽवितासि सुन्वतो  
वृक्तबर्हिष ऽइति पंक्तोश्च षट्पदाश्च शस्त्वैका हिके निविदं दधातीति  
मरुत्वतीयम् ॥९॥

अब मध्य दिन का सवन कीजिये ।

त्रि ऋदुकेषु महिषो यवाशिरस्म तुविशुष्मस्तृ यत्सोममपिब  
द्विष्णुना सुतं यथावशत् । स ई मपाद महि कर्म कर्तने महायुरु सैनं  
सश्चदेवो देवं सत्यमिदं सत्य इन्द्र । ( ऋ० २/२२/१ )

मास्तृतीय शस्त्र का पहलामन्त्र अतिच्छन्द है । छन्दों में अतिच्छन्द अतिष्ठ है । ऊपर उठा हुआ । है और यज्ञों में अश्वमेध अतिष्ठ है । अश्वमेध की प्राप्ति के लिये । यह मंत्र तीन बार पढ़ा जाता है, इसलिये चित्र या तीन मंत्रों के बराबर है । इससे त्रिच का ही फल मिल जाता है ॥

ओं इदं वसो सुतमन्धः पिवा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयित्ररिमा ते ॥ ऋ० ८/१/२

यह अनुचर त्रिच है । ( अर्थात् उससे अगले तीन मंत्र हैं । यह चित्र एकाह यज्ञ की नित्य जोड़ने वाली कही है ।

ओं इत्या हि सोम इन्मदे ॥ ऋ० १/८०

अवितासि सुन्वतो वृक्त बर्हिष ॥ ऋ० ८/३६/१-७.



इन पंक्ति और षट्पद सूक्तों को पढ़कर ऐकाहिक यज्ञ के सूक्त में "निविद" डाल देता है। यह है मरुत्वतीय शस्त्र ॥९॥

अथा तो निष्कैवल्यम् । महानाम्न्यः पृष्ठं भवन्ति सानुरूपाः सप्रगाथा, स सति सर्वे वै कामा महानाम्नीषु सर्वे कामा ऽ अश्वमेघे सर्वेषां कामानामाप्त्या ऽ इन्द्रोमदाय वावृधे प्रेदं ब्रह्म वृत्र तूर्येष्वा विथेति पंक्तीश्च षट् पदाश्च शस्त्वैकाहिके निविद दधाति क्लृप्तं माध्यन्दिनं सवनम् ॥१०॥

"निष्कैवल्य" शस्त्र को लीजिये । महानाम्नी पृष्ठ होते हैं । इनको वह अनुरूप और प्रगाथ के साथ पढ़ता है, सब कामनाओं की पूर्ति के लिए, क्योंकि "महा नाम्नी" और "अश्वमेघ" में सब कामनायें पूरी होती हैं ।

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।

ऋग० १/८११-९

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविच प्रसुन्धतः शचीपत इन्द्र

ऋग० ८१३७१-६

इन पंक्ति और षट्पद सूक्तों को पढ़कर ऐकाहिक यज्ञ के सूक्त में "निविद" डाल देता है । इस प्रकार मध्यन्दिन का सवन समाप्त हुआ ॥१०॥

अथातस्तृतीय सवनम् । अतिच्छन्दाऽएव प्रतिपद्वैश्वदेवस्यामित्यं देवं सवितारमोण्योरिति तस्याऽएतदेव ब्राह्मण यत्पूर्वस्याऽअमित्वा देव सवितरित्यनुचरोऽभिवानभिभूत्यै रूपमुदुष्य देवः सविता दमूनाऽइति सावित्रं शस्त्वैकाहिके निविदं दधाति मही घावा पृथिवी ऽइह ज्येष्ठेऽइति चतुर्ऋचं घावा पृथिवीयं शस्त्वै काहिके विविदं दधाति को नु वां मित्रा वरुणावृतायन्निति वैश्वदेवं शस्त्वै काहिकं निविदं दधाति वैश्वदेवम् ॥११॥

अब तीसरा सवन लीजिये ।

वैश्वदेव शस्त्र का पहला अतिच्छन्द मन्त्र यह है :—

ओं अमित्यं देवं सवितारमोण्योः

सजु० ४/२९

पहले अविच्छन्दों का जो फल है वह इसका भी ।

ओं अमित्वा देवता सविताज्ञानं वार्याणाम् । इत्यादि ।

ऋग० १/२४/३-४

यह चित्र अनुचर है । इसमें "अमि" शब्द आता है, "विजय" का चिन्ह है ।

अभिभूति या विजय के लिए ।

ओं उपुष्य देवः सवितादमूना हिरण्य पाणिः प्रतिदोष०

ऋ० ६/७१/४-६

इस सविता सम्बन्धी त्रिच को पढ़कर ऐकाहिक यज्ञ के सूक्त में निविद डाल देता है ।



( ७७ )

ओं मही धावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचां भवतां शुचयद्भिरकैः । ऋ० ४/५६/१-४

इन चार "धावा पृथिवी के मन्त्रों को पढ़कर ऐकाहिक यज्ञ के सूक्त (तक्षकथं०) (ऋ० १/१११) में निविद डाल देता है ।

ओं को नुनां मित्रा दक्षणा वृतापत्

५४०।

इस वैश्यदेव शस्त्र को पढ़कर ऐकाहिक यज्ञ के सूक्त (आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु०) (ऋ० १/८९) में निविद डाल देता है । यह हुआ वैश्व देव शस्त्र ॥११॥

अथातऽआग्निमास्तम् । मूर्ध्नि दिवोऽरतिं पृथिव्याऽइति वैश्वान-  
रीयं शस्त्रैकाहिके निविदं दधात्या रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसऽइति  
मास्तं शस्त्रैकाहिके निविदं दधातीमुमूषु वोऽतिथिमुषर्बुधमिति न  
वर्चं जातवेदसीयं शस्त्रैकाहिके निविदं दधाति । तद्यदैकाहिकानि  
निविद्वानानि भवन्ति । प्रतिष्ठा वै ज्योतिष्टोमः प्रतिष्ठायाऽअप्रच्युत्यै ॥१२॥

अब अग्निमास्त शस्त्र (सायं सवन का अन्तिम शस्त्र लीजिए ।

"मूर्ध्नि दिवोऽरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्० (ऋ० ६/७/)

इस वैश्वानर मंत्र को पढ़कर ऐकाहिक यज्ञ के यज्ञ—ऋ० ३/३ में विविद डाल देता है ।

"आ रुद्रास इन्द्रवन्तः स जोषमोहिरण्य रथाः सुविताय० (ऋ० ५/५७/१)

इस मास्त मंत्र को पढ़कर ऐकाहिक यज्ञ के मंत्र—प्रत्यक्षसः प्रतवसो विर ष्णिनो (ऋ० १/८७) में निविद डालता है ।

इममूषु वोऽतिथिमुषर्बुधम् विदवा सां विशांपति मृञ्जसेगिरा । (ऋ० ६/१५/१-९)

इन नव जातवेद मन्त्रों को पढ़कर ऐकाहिक यज्ञ के मन्त्र ओंप्रतव्यसीं  
धीतिमग्नये वाचो मति सहसः सूनवे भरे । (ऋ० १/१४३) में निविद डालता है ।  
। ऐकाहिक यज्ञ मन्त्रों में निविद क्यों डाले जाते हैं ? अतः कि ज्योतिष्टोम प्रतिष्ठा  
है । दुष्ट प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिये ॥१२॥

तस्यैते पशवो भवन्ति । अश्वस्तूपरो गोमृगऽइति पञ्चदश पर्यङ्ग्या-  
स्तेषामुक्तं ब्राह्मणमथैतऽआरण्या वसन्ताय कपिञ्जलानलभते ग्रीष्माय  
कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तित्तिरीनिति तेषाम्वेवोक्तम् ॥१३॥

उस दिन के ये पशु होते हैं :—अश्व, तूपर, (सींग रहित बकरा) और गो-  
मृग पन्द्रह परि अंग होते हैं । इसका फल बताया जा चुका है । फिर ये वन के पशु-



वसन्त के लिये तीन कर्पिञ्जल, ग्रीष्म के लिए कलविक (गौरय्या) वर्षा के लिये तित्तिर । इनका भी फल बताया जा चुका है ॥१३॥

अथैतानेक विंशतये । चातुर्मास्य देवताभ्यः एकविंशति मेतु विंशति पशूनालभतः स एतावन्तो वै सर्वे देवा यावत्पशुचातुर्मास्य देवता सर्वे कामाऽश्वमेधे सर्वान्देवान् प्रीत्वा सवन्क्रियमानाप्नवानीति न तत्र कुर्यात् ॥१४॥

अब इक्कीस यूषों के लिये पशु लीजिए । चातुर्मास्य (ग्यारह) देवताओं से हर एक के लिये इक्कीस-इक्कीस पशु । जितने चातुर्मास्य के देवता हैं, उतने ही देवता हैं । अश्वमेध में सब कामनायें हैं । सब देवों को प्रसन्न करके सब कामनायें की प्राप्ति कहेंगा । ऐसा सोचता है । परन्तु ऐसा न करे ॥१४॥

सप्त दशैव पशून्मध्वमे यूपऽआलभेत । प्रजापतिः सप्तदशः सर्वे सप्तदशः सर्वमश्वमेधः सर्वस्याप्त्यै सर्वस्यावरुद्ध्यै षोडश षोडशोत्तरे षोडश कलं वाऽइदं सर्वमश्वमेधः सर्वस्याप्त्यै सर्वस्यावरुद्ध्यै त्रयोदश त्रयोदशारण्यानाकाशे ष्वालभते त्रयोदश मासाः संवत्सरः सर्वं संवत्सरं सर्वमश्वमेधः सर्वस्याप्त्यै सर्वस्यावरुद्ध्यै ॥१५॥

मध्य के यूप में सत्रह पशुओं का आलभन (स्पर्श या प्राप्ति) करे । प्रजापति सत्रहवाला है सत्रह "सव" है । अश्वमेध सब हैं । सबकी उपलब्धि के लिये सबकी प्राप्ति के लिये प्रत्येक दूसरे यूप में सोलह । क्योंकि इस सब में सोलह कलायें होती हैं । अश्वमेध "सव कुछ" है । सबकी उपलब्धि या प्राप्ति के लिये । बीच के हर अवकाश के लिये १३ जंगली पशुओं का आलभन स्पर्श या प्राप्ति करता है । संवत्सर में १३ मास होते हैं । संवत्सर सब कुछ है । सबकी उपलब्धि के लिये । सबकी प्राप्ति के लिये अश्वमेध सब कुछ है ॥१५॥

अथ पुरा वहिष्पवमानात् । अश्वं निक्तवोदानयन्ति तेन पवमाना सर्पन्ति तस्योक्तं ब्राह्मणं स्तुते वहिष्पवमानेऽश्वमास्तावमा क्रमयन्ति यद्यैव वा जिघ्रेद्वि वा वर्तेत समृद्धो मे यज्ञऽइति ह विधात्तमुपा कृत्य अश्वयुः राह होतरभिष्टुहीति तमेकादशभिर्होताऽभिष्टीति ॥१६॥

वहिष्पवमान के पाठ से पहले (अश्वयुः के सहयोगी) घोड़े को नहला लाते हैं और पवमान के लिए चलते हैं । उसका फल बताया जा चुका है । वहिष्पवमान के पाठ के उपरान्त घोड़े के पाठ के स्थान में लाते हैं । यदि वह छींक दे लोट दे तो समझ ले कि यज्ञ सफल हो गया । उस अश्व को लाकर अश्वयुः कहें



( ७९ )

है । "होता ! स्तुति कर ।" होता ग्यारह मन्त्रों से स्तुति करता है  
(ऋग्वेद १/१६३/१-११) ॥

यद क्रन्दः प्रथमं जायमानऽइति । त्रिः प्रथमया त्रिस्तमया ताः  
पञ्चदश सम्पद्यन्ते पञ्चदशो वै वज्रो वीर्यं वज्रो वज्रणेवेतद्वीर्येण यजमानः  
पुरस्तात् पाप्मानमपहते तद्वै यजमानायैव वज्रः प्रदीयते योऽस्यस्तुत्यस्त  
स्तर्तवऽउप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वोपप्रागापात्परमं यत्सधस्थमिति ॥१७॥

यद क्रन्दः प्रथमं जायमानः.....इत्यादि । पहले मंत्र को तीन बार और अन्त  
के मन्त्र को तीन बार पढ़ता है । इस प्रकार १५ मंत्र हो जाते हैं । पन्द्रह वज्र है ।  
वज्र वीर्य है । इस वीर्य रूपी वज्र से यजमान पहले पाप को दूर करता है । वस्तुतः  
यजमान को यह वज्र दिया है । कि जिस को मारना हो उसे मारे ॥१७॥

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा तथा उप प्रागात् परमं यत्सधस्थम् ऋ० १।  
१६३ एते उद्धृत्य । मानो मित्रो वरुणोऽ अर्यमाऽ युरित्ये तत्सूक्तमग्निगावा  
वपति चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोरित्युहैवऽएतां वङ्गक्रीणां पुरस्ताद्  
दधति नेदना यतने प्रणवं दधामेत्यथो नेदेकवचनेन बहुवचनं व्यवायामेति  
न तथा कुर्यात्सार्धमेष सूक्तमावपेदुप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वोपप्रागात् परम  
यत्सधस्थमिति ॥१८॥

इन दो मंत्रों को छोड़कर "अग्निगु" में यह मंत्र रख देता है—  
मानो मित्रो वरुणो अर्यमायुः इन्द्र ऋभु मरुतः परिख्यन् ऋ (१-१६२९)

कोई कोई इस मन्त्रः—

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देव बन्धोः० (ऋ० १/१६२/१८) को "वङ्गक्रीः" के पहले  
रख देने हैं कि कहीं प्रणव (ओ३म्) की अनुचित स्थान पर न रख दें, या एक  
वचन से बहुवचन का आशय लें। ऐसा न करे । समस्त सूक्त मिला देवे । उप  
प्रागाच्छसनं वाज्यर्वोपप्रागात् परमं यत्सधस्थम् । (ऋ० १/१६२) अर्थात् घोड़ा बध  
के स्थान में गया अर्थात् परम धाम को गया ॥१८॥

ब्राह्मणम् ॥३॥ (५-१)





( ८० )

## ब्राह्मण २

संवादः

एतेऽउक्त वा । यदग्निगोः परिशिष्टं भवति तदाह वासोऽधिवास  
हिरण्यमित्यश्वायोपस्तृणन्ति तस्मिन्नेनमधि संज्ञपयन्ति संज्ञप्तेषु पशू  
पत्नयःपान्नेजनैरुदायन्ति चतस्रश्च जायाः कुमारी पंचमी चत्वारिच  
शतान्यनु चरीणाम् ॥१॥

इतने मंत्रों को पढ़कर अग्निगु का जो परिशिष्ट भाग आता है, उसको पढ़ता है  
घोड़े के लिये “कपड़ा ऊपर की चादर और सोने” को विछाता है । इस पर वे घो  
का वध करते हैं । जब पशुओं का वध हो चुका तो पत्नियां पैर धोने के लिये पान्  
लाती हैं । चार पत्नियां, पांचवी एक कुमारी, चार सौ अनुचरियां ॥१॥

निष्ठितेषु पान्ने जनेषु । महिषीमश्वायोपनिपादयन्त्यथैननावधि वासे  
सम्प्रोर्णुवन्ति स्वर्गं लोके प्रोर्णुवायामित्येष वै स्वर्गं लोको यत्र पशू  
संज्ञपयन्ति निरायत्याश्वस्य शिश्नं महिष्युपस्थे निधत्ते वृषावाजो रेतोषा  
रेतो दधात्विति मिथुनस्मैव सर्वत्वाय ॥२॥

पैर धोने के पानी के तैयार होने पर महिषी (पटरानी) को घोड़े के पा  
सुलाते हैं और उपवस्त्र से ढक देते हैं । स्वर्ग लोक मैं तुम अपने को ढक लो, ऐ  
कहकर । जहाँ पशु का वध करते हैं वही स्वर्ग लोक है । अश्व के शिश्न को महि  
उपस्थ में रखती है और मिथुन की पूति के लिये कहती हैं “वृषा वाजी रेतोषा र  
दधातु (यजु० २३।२४) (अर्थात् वीर्य खींचने वाला वीर्य धारण करावे) ॥२॥

तयोः शयानयोः । अश्वं यजमानोऽभिमेथत्युत्सकथ्याऽअव गुदं वेहीति  
तं न कश्चनप्रेत्यभिमेथति नेद्य जमानं प्रति प्रतिः कश्चिसदिति ॥३॥

जब वे दोनों लेटे होते हैं तो यजमान घोड़े को संबोधित करता है  
“उत्सकथ्या अव गुदं वेहि” (यजु० २३।२१) । इसका कोई उत्तर नहीं देता, जिस  
कोई यज्ञदान का प्रति प्रति (मुकाबिले का न हो जाय) ॥३॥

अथाध्वर्युः कुमारीमभिमेथति । कुमारि ह्ये-ह्ये कुमारि यकाऽअव  
शकुन्तिकेति तं कुमारी प्रत्यभिमेथत्यध्वर्यो ह्ये-ह्येऽध्वर्यो यकोऽअव  
शकुन्तकऽइति ॥४॥

अब अध्वर्यु कुमारी से कहता है । हे हे कुमारी ! वह छोटी चिड़िया  
(यजु० २३/६१) कुमारी उसका उत्तर देती है । हे हे । अध्वर्यु ? वह छोटी  
चिड़िया” (यजु० २३/२३) ॥४॥



( ८१ )

अथ ब्रह्मा महिषीमभि मेथति । महिषि ह्ये-ह्ये महिषि माता च ते पिता च ते ऽ ते ग्रं वृक्षस्य रोहतऽइति तस्यै शतं, राजपुत्र्योऽनुवर्यो भवन्ति ता ब्रह्मणं प्रत्यभि मेथन्ति ब्रह्मह्ये-ह्ये ब्रह्मन्माता च ते पिता च त ऽग्रे वृक्षस्य क्रीडतऽइति ॥५॥

अब ब्रह्मा महिषी को कहना है । "हे हे ! महिषी माता च ते पिता च ते ऽ ग्रं वृक्षस्य रोहतः" (यजु० २३/२४) सौ राज पुत्रियां उसकी अनुचरी होती हैं । वे ब्रह्मा को उत्तर देती हैं:—"हे हे ब्रह्मा । माता च ते पिता च ते ऽग्रं वृक्षस्य क्रीडतः (यजु० २३/२५) ॥५॥

अथोद्गाता वावातामभिमेथति । वावाते ह्ये-ह्ये वावातऽऊर्ध्वा मेनामुच्छ्राययेति तस्यै शतं, राजन्याऽनुचर्यो भवन्ति ताऽ उद्गातारं प्रत्यभि मेथन्त्युद्गातर्ह्ये-ह्यऽ उद्गातरूर्ध्वं मेनमुच्छ्रयतादिति ॥६॥

याज्ञवल्क्य ने कहा कि प्रजापति के पशुओं की वपाओं की आहुतियां साथ साथ देनी चाहिये और जो पशु एक एक देवता के हैं, उनकी वपा की आहुति साथ २ देना चाहिये । इस प्रकार एक एक करके देवताओं को प्रसन्न करना है । यज्ञ की समाप्ति के लिए सीधा प्रसन्न करता है और कोई भूल नहीं करता है ॥६॥

अब उद्गाता वावाता से कहता है, "हे हे वावात् ! ऊर्ध्वमेनामुच्छ्रायय  
यजु० २३/२६

उसकी जो सौ क्षत्रिय अनुचरियां होती हैं वे उत्तर देती हैं:—कि हे उद्गाता  
ऊर्ध्वमेनामुच्छ्रयतात् २३/२६ ॥६॥

अथ होता परिवृक्तामभि मेथति । परिवृक्ते ह्ये-ह्ये परिवृक्ते यदस्याऽअं, हुमेद्या ऽइति तस्य शतं, सूत ग्रामाण्यां दुहितरोऽनुचर्यो भवन्ति ता होतारं प्रत्यभिमेथन्ति होतर्ह्ये ह्ये होतर्ह्यं देवासो ललामगुमिति ॥७॥

अब होता परिवृक्ता (रानी) से कहता है—

"हे परिवृक्ता" यदस्या अं हुमेद्या०

यजु० २३/२८

नौकरों की सौ लड़कियां उसकी अनुचरी होता को उत्तर देती हैं:—

"यत् देवा सो ललामगुम्

यजु० २३/२९ ॥७॥

अथ क्षता पालागलीमभि मेथति । पालागलि ह्ये-ह्ये पालागलि यद्धरिणो यवमन्ति न पुष्टं पशु मन्यतऽइति तस्यै शतं क्षात्र संग्रहीतृणां दुहितरोऽनुचर्यो भवन्ति ताः क्षतारं प्रत्यभिमेथन्ति क्षतर्ह्ये-ह्ये क्षतर्ह्यं द्र-  
रिणो यवमन्ति न पुष्टं बहु मन्यतऽइति ॥८॥



अव क्षता पालागली रानी से कहता है — “हे पालागली”

“यद् हरिणो यवमन्ति न पुष्टं पशु मन्यते य० २३।३०

सूत आदि की सौ लड़कियाँ उसकी सहचारिणी होती हैं। वे उत्तर देती हैं।

“हे क्षता। यद् हरिणो यवमन्ति न-पुष्टं बहु मन्यते य० २३।३१ ॥८॥

सर्वाप्तिर्वाऽएषा वाचः। यदभिमेथिकाः सर्वे कामाऽअश्वमेघं सवया  
व चा सर्वान्कामानाप्नवामत्युत्पापयन्ति महिषी ततास्ता यथेतं प्रति-  
परायन्त्यथे तरे सुरभिमतीमृचमन्ततो ऽन्वाहुर्दधि काव्णोऽअकारिष-  
मिति ॥९॥

ये अभिमेथिक वाणियाँ सब साधनों को प्राप्त करती हैं। अश्वमेघ में सब कामनाओं की प्राप्ति होती है। सब प्रकार की वाणी से सब कामनाओं को प्राप्त करें “ऐसा सोचकर के महिषी को उठाते हैं। फिर वे स्त्रियाँ जैसी आई वैसी लौट जाती हैं। अन्य लोग “सुरभि” वाले मंत्र को बोलते हैं —

“दधि ऋह्यो-अकारिषम् ऋ० ४/३९/६ ॥९॥

अप वाऽ एतेभ्यऽ आयुर्देवताः कामन्ति। ये यज्ञेऽपूतां वाचं वदन्ति  
वाचमेवैतत्पुनते देव यज्यायै देवतानामन पक्रमाय या च गो मृगे वपा  
भवति या च आज्ञे तूपरे तेऽअश्वे प्रत्यवधाय हरन्ति नाश्वस्य वपाऽस्तीति  
वदन्तो न तथा कुर्यादश्वस्यैय प्रत्यक्षं मेदऽ आहरे त्रज्ञाताऽ इतराः ॥१०॥

जो यज्ञ में अपवित्र भाषा बोलते हैं उनसे आयु और देवता चले जाते हैं। उनकी वाणी को ही वे पवित्र करते हैं, जिससे देवता देवयज्ञ से भागे नहीं। गो मृग में जो वपा होती है और तूपर बकरे में जो वपा होती है उसको कुछ लोग घोड़े पर रखते हैं और फिर उठा लेते हैं यह कह कर कि “अश्व में तो क्या होती नहीं”। परन्तु ऐसा न करे। घोड़े के भेद को ले लेवे। दूसरों के भेद साधारण होते हैं ॥१०॥

श्रुतासु वपासु। स्वाहा कृतिभिश्चरित्वा प्रत्यञ्चः प्रति परेत्य  
सदसि ब्रह्मोद्यं वदन्ति पूर्वया द्वारा प्रपद्य यथाधिष्ण्यं व्युप विशन्ति ॥११॥

जब वपायें पक जायें और “स्वाहा” से उनकी आहुतियाँ दे दी जाय तो यज्ञशाला के पीछे जाकर वे “सदस” में ब्रह्मोदन (शास्त्रार्थ) करते हैं। आगे के द्वार से आकर अपनी अपनी धिष्ण्या में बैठ जाते हैं ॥११॥

स होताऽध्वयुं पृच्छति। कः स्वदेकाकी चरतीति तं प्रत्याह सूर्यऽ  
एकाकी चरतीति ॥१२॥



( ८३ )

होता अध्वर्यु से पूछता है—

“कः स्वदेकाकी चरति” (यजु० २३ ४५) कौन अकेला विचरण करता है ?

वह उत्तर देता है—

“सूर्यः एकाकी चरति” (यजु० २३।४६।१२) सूर्य अकेला विचरण करता है ।

अथाध्वर्युर्होतारं पृच्छति । किं स्वित्सूर्यसमं ज्योतिरिति तं  
प्रत्याह ब्रह्म सूर्यं समं ज्योतिरिति ॥१३॥

अब अध्वर्यु होता से पूछता है :—

किं स्वित्सूर्यसमं ज्योति (यजु० २३।४७)

वह उत्तर देता है—

ब्रह्म सूर्यं समं ज्योतिः (यजु० २३।४८) ॥१३॥

अथ ब्रह्मोद्गातारं पृच्छति । प्रच्छामि त्वा चित्तये देव सखेति तं  
प्रत्याहापि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मीति ॥१४॥

अब ब्रह्मा उद्गाता से पूछता है ।

पृच्छामि त्वा चित्तये देव सखे० । (यजु० २३।४९)

वह उत्तर देता है—

अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि० । (यजु० २३।५०) ॥१४॥

अथोद्गाता ब्रह्माणं पृच्छति । केष्वन्तः पुरुषऽ आविवेशेति तं  
प्रत्याह पञ्चस्वन्तः पुरुषऽआविवेशेति ॥१५॥

अब उद्गाता ब्रह्मा से पूछता है :—

केष्वन्तः पुरुष आविवेश० (यजु० २३।५१)

वह उत्तर देता है—

पञ्चस्वन्तः पुरुष आविवेशः० (यजु० २३।५२) ॥१५॥

एतस्यामुक्तायामुत्थाय । सदसोऽधि प्राञ्चो यजमानमभ्या यन्त्यग्रेण  
हविर्घनिऽ आसीनमेत्य यथा यतनं पर्युपविशन्ति ॥१६॥

इस मन्त्र को पढ़कर वे उठते हैं और सदस से पूर्व की ओर यजमान के  
पास जाते हैं जब वह हविर्घनि के पास बैठा होता है तो उसके पास जाकर अपने  
अपने स्थानों पर बैठ जाते हैं ॥१६॥

स होताऽ ध्वर्यु पृच्छति । का स्वदासीत्पूर्वचित्तिरिति तं प्रत्याह  
घोरासीत्पूर्वचित्तिरिति ॥१७॥

अब होता अध्वर्यु से पूछता है—



( ८४ )

का स्विदासीत् पूर्वं चित्तिः० (यजु० २३।५३)

वह उत्तर देता है :—

औरी रासीत् पूर्वं चित्तिः० (यजु० २३।५४) ॥१७॥

अथाध्वयुं होतारं पृच्छति । काऽइमिरे पिशंगिलेति तं प्रत्याहाजरे  
पिशंगिलेति ॥१८॥

अब अध्वर्यु होता से पूछता है ।

“का इमिरे पिशंगिला

यजु० २३।५५

वह उत्तर देता है ।

अजारे पिशंगिला

यजु० २३।५५ ॥१८॥

अथ ब्रह्मोद्गातारं पृच्छति । कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणीति तं  
प्रत्याह षडस्य विष्ठाः शतमक्षराणीति ॥१९॥

अब ब्रह्म उद्गाता से पूछता है

कत्यस्य विष्ठा कत्मक्षराणी.....

यजु० ५७

उत्तर देता है ।

षडस्य विष्ठाः शतमक्षराणि.....

यजु० ५८

अथोद्गाता ब्रह्माणं पृच्छति । कोऽस्य वेद भुवनस्य नाभिमिति  
तं प्रत्याह वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिमिति ॥२०॥

अब उद्गाता ब्रह्मा से पूछता है ।

यजु० ५९

“को अस्य वेद भुवनस्य नाभिम

यजु० ५९

वह उत्तर देता है :—

“वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिम ॥६०॥

यजु० ६०

अथाध्वयुं यजमानः पृच्छति । पृच्छमि त्वा परमन्तं पृथिव्याऽ इति  
तं प्रत्याहेयं वेदिः परोऽन्तः पृथिव्याऽ इति ॥२१॥

अब यजमान अध्वर्यु से पूछता है—

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः

वह उत्तर देता है :—

इदं वेदिः मरो अन्तः पृथिव्याः ॥२१॥

यजु० ६१

सर्वाप्तिर्वाऽएषा वाचाः । यद् ब्रह्मोद्यं सर्वे कामाऽअश्वमेधे  
सर्वया वाचा सर्वान्कामानाप्नवामेति ॥२२॥

यह वाणी की सर्वाप्ति है । ब्रह्मोद्यं सब कामनाओं की पूर्ति करता है ।  
अश्वमेध में सब वासियों से सब कामनाओं की पूर्ति होती है ॥२२॥



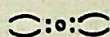
उदिते ब्रह्मोद्ये । प्रपद्याध्वर्युं हिरण्मयेन पात्रेण प्राजायत्यं महिमानं  
ग्रहं गृह्णाति तस्य पुरोरुग्घिरण्यगर्भः समवर्तताग्रस्त्यथास्य पुरोज्जुवाक्या  
सुभूः स्वयम्भूः प्रथमऽइति होता यक्षत्प्रजापतिमिति प्रैषः प्रजापते न  
त्वदेतान्यन्यऽइति होता यजति वषट्कृते जुहोति यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा  
सम्बभूवेति नानूवषट् करोति सर्वहुतं, हि जुहोति ॥२३॥

जब ब्रह्मोद्य हो चुके तो अध्वर्यु आता है तथा स्वर्ण के पात्र में प्राजापत्य  
महिमान ग्रह को निकालता है । इसका पुरोरुग् मंत्र यह है :—

“हिरण्य गर्भः समुवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्” यजु० २३।१  
ऋग्० १०।१२१, उसके पुरोनुवाक्य ये हैं—सुभू स्वयंभूः प्रथमः आदि (२३-६३) ।  
प्रैष यह है—होता यक्षत्प्रजापतिम् आदि ( यजु० २३-६४ ), होता कहता है”—  
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि (यजु० २३-६५) वषट्कार होने पर अध्वर्यु  
इस मंत्र से आहुति देता है ।

“यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा संवभूव..... वषट्कार नहीं कहता । क्योंकि सोम  
ग्रह की पूर्ण आहुति दे देता है ॥२३॥

ब्राह्मणम् (५-२) ॥



## ब्राह्मण ३

### वपा होमः

अथातो वपानां होमः । ना नैव चरेयुरा वैश्व देवस्य वपायै  
वैश्व देवस्य वपायां हुतायां तदन्वितरा जुहुयुरिति हस्माह सत्यकामो  
जाबालो विश्वे वै सर्वे देवास्तदेनान्यथादैवतंप्रीणातीति ॥१॥

अब वपाओं के होम की चर्चा करते हैं । वैश्व देव की वपा को आहुति देने  
तक सब प्रथक् प्रथक् आहुतियां दें । यह सत्यकाम जाबाल का कहना है । वैश्वदेव  
सब देवता हैं । इन सब देवताओं को एक एक देवताओं को प्रसन्न करता है ॥१॥

ऐन्द्राग्नस्य वपाया हुतायाम् । तदन्वितरा जुहुयुरिति हस्माहतुः  
सोमायौ मानुतन्तव्याविन्द्राग्नी वै सर्वे देवास्तच्छे वै नान्यथा देवतं  
प्रीणातीति ॥२॥

इन्द्र अग्नि की वपा की आहुति देने के उपरान्त अन्य देवताओं की आहुतियां  
देवें । यह वाक्य है दोनों सोमाय मानुतन्तव्यों का, क्योंकि इन्द्र और अग्नि में सब देवता  
गण समाविष्ट हो जाते हैं । इन्हें प्रत्येक देवता प्रथक् प्रथक् प्रसन्न करता है ॥२॥



कायस्य वपाया हुतायाम् । तदन्वितरा जुहुयुरिति ह स्माह  
शैलालिः प्रजापतिर्वै कः प्रजापति मुवाऽअनु सर्वे देवास्तदेवै नान्यथा देवतं  
प्रीणातीति ॥३॥

काय की वपा की आहुति हो जाने के पश्चात् अन्य दूसरे देवताओं को  
आहुतियां देवे, ऐसा शैलालि का कथन है । क्योंकि कः प्रजापति है और प्रजापति के  
पीछे समस्त देवता गण हैं, अतः इन्हें ही सब देवतागण को प्रसन्न करता है ॥३॥

एक विंशति चातुर्मास्य देवताऽअनुद्रुत्य । एक विंशतिधा कृत्वा  
प्रचरेयुरिति ह स्माह भाल्लवेयऽएतावन्तो वै सर्वे देवा यावत्यश्चातुर्मास्य  
देवता स्वदेवैरनान्यथा देवतं प्रीणातीति ॥४॥

चातुर्मास्य के २१ देवताओं के निमित्त आहुतियां देकर वपा के २१ भाग करे,  
ऐसा भाल्लवेय का कथन है । क्योंकि जितने चातुर्मास्य देवता हैं उतने ही समस्त  
गण हैं । इस प्रकार वह एक एक देवता करके उन सबको प्रसन्न करता है ॥४॥

नानैव चरेयुः । इतीन्द्रोतः शौनकः किमुत त्वरेरंस्त देवै नान्यथा  
देवतं प्रीणातीत्येतदह तेषां वचोऽन्या त्वेवात स्थितिः ॥५॥

इन्द्रोतशौनक का कथन है कि प्रथक् प्रथक् आहुतियां देवे । शीघ्रता क्यों करे ।  
इस प्रकार एक एक करके देवताओं को प्रसन्न करता है । यह है इनका प्रयोजन परन्तु  
प्रथा तो प्रथक् ही है ॥५॥

अथ हो वाच याज्ञवल्क्यः । सकृदेव प्राजापत्याभिः प्रचरेयुः सकृद्देव  
देवत्याभिस्त देवै नान्यथा देवतं प्रीणात्यञ्जसा यज्ञस्य स स्थामुपैति न  
ह्वलताति ॥६॥

याज्ञ वल्क्य ने कहा कि प्रजापति के पशुओं की वपाओं की आहुतियां साथ-  
साथ देवी चाहिये और जो पशु एक-एक देवताओं के हैं, उनकी वपा की आहुति  
साथ-साथ देनी चाहिये । इस प्रकार यह एक-एक करके देवताओं को प्रसन्न करता  
है । यज्ञ की समाप्ति के लिये सीधा प्रसन्न करता है और कोई भूल नहीं करता ॥६॥

हुतासु वपासुः । प्रपद्याध्वयू रजतेन पात्रेण प्राजापत्यं महिमान-  
मुत्तरं ग्रहं गृह्णाति तस्य पुरोरुयः प्राणतो निमिषतो महित्वेति विपर्यस्ते  
याज्याऽनु वाक्येऽग्र यातयामतायाऽएषऽएव प्रैषो वषट्कृते जुहोति यस्ते  
रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूवेति नानुवषट् करोति तस्योक्तं  
ब्राह्मणम् ॥७॥

वपाओं की आहुतियां दी जाने के पश्चात् अध्वर्युः, हविर्घान में जाता है  
और चांदी के पात्र में प्रजापति का दूसरा महिमान ग्रह निकालता है उसका पुरो



( ८७ )

रुग् मन्त्र यह है—“यः प्राणतोनिमिषतो महित्वैक यजु० २३/३ याज्ञ और अनुवाक्य का विपर्यय हो जाता है अर्थात् याज्ञ के स्थान में अनुवाक्य और अनुवाक्य के स्थान में याज्ञ । पूर्ण शक्ति के प्राप्ति के लिये । प्रैष मन्त्र पहला ही होता है । वषट्कार से आहुति देता है इस मन्त्र से “यस्ते रात्री संवत्सरे महिमा सम्बभूव” यजु० २३/८ वषट् को दुबारा नहीं कहता । इस फल ब्राह्मण में बताया जा चुका है ॥७॥

नान्येषां पशूनां तेदन्याऽवद्यन्ति । अवद्यन्त्यश्वस्य दक्षिणतोऽन्येषां पशूनामवद्यन्त्युत्तरतोऽश्वस्य प्लक्ष शाखा स्वन्येषां पशूनामवद्यन्ति वेतस शाखाश्वस्य ॥८॥

अन्य पशुओं के रक्त के आहुतियों के भाग नहीं करते तथा घोड़े के करते हैं । दक्षिण की ओर अन्य पशुओं के तथा उत्तर की ओर घोड़े के अन्य पशुओं के प्लक्ष शाखाओं पर घोड़े के शाखाओं पर ॥८॥

तदु हो वाच सात्य यज्ञिः । इत रथैव कुर्युः पथऽएव नापोदित्य मिति पूर्वात्वेव स्थिति रुक्थ्यो यज्ञस्ते नान्तरिक्ष लोकमुध्नोति सर्वस्तोमोऽति रात्रऽउत्तममहर्भवति सर्वं वै सर्वस्तोमोऽति रात्रः सर्वमश्वमेधः सर्वस्यावरुद्ध्यै ॥९॥

इस पर सात्ययज्ञि कहता है कि चाहे किसी प्रकार से करे । सत्यपथ को न त्यागे । परन्तु पहली प्रथा प्रचलित है । यज्ञ रुक्थ्य है । इससे अन्तरिक्ष लोक की समृद्धि करता है । सबकी उपलब्धि के लिये पिछला दिन सर्वस्तोम अतिरात्र होता है क्योंकि सर्वस्तोम अतिरात्र सब कुछ है । अश्वमेध भी सब कुछ है ॥९॥

तस्य त्रिवृद्बहिष्पवमानम् । पञ्चदशान्याज्यानि सप्तदशो माध्यन्दिनः पवमानऽएक विशानि पृष्ठानि त्रिणवस्तृतीयः पवमानस्त्रयस्त्रिं शमग्निष्टोम सामैक विशान्युक्थान्येकविंश षोडशी पञ्चदशी रात्रिस्त्रिवृत् संघिर्यद् द्वितीयस्याह्नः पृष्ठ्यस्य षडहस्य तच्छस्त्रमतिरात्रो यज्ञस्तेनामुं लोक मुध्नोति ॥१०॥

इसका बहिष्पवमान त्रिवृत् आज्य स्तोत्र १५ मन्त्रों के मध्य दिन के पवमान १७ मन्त्रों के, पृष्ठ २१ मन्त्रों के, तृतीय पवमान त्रिणव (२७ मन्त्रों का) अग्निष्टोम साम ३३ का, रुक्थ २१ का, षोडशी २१ की, रात्रि १५ की, सन्धि त्रिवृत् (९) की, पृष्ठ्य षडह के दूसरे दिन का जो शस्त्र है वह अतिरात्र यज्ञ में प्रयुक्त होता है । इससे द्यौ लोक को प्राप्त होता है ॥१०॥



( ८८ )

एक विंशति सवनीयाः पशवः । सर्वऽआग्नेयास्तेषां समानं कर्मैत्यु-  
हैकऽआहुश्चतुर्विंशति त्वेवैतान्गव्या नालभेत द्वादशभ्यो देवताभ्यो द्वादश  
मासा संवत्सरः सर्वं संवत्सर सर्वमश्वमेधः सर्वस्यपत्यं सर्वस्यावरुद्धय ॥१॥

सवनीय पशु २१ होते हैं । वे सब अग्नि देवता के हैं और उनके कर्म समान  
है ऐसा कुछ का सिद्धान्त है परन्तु १२ देवताओं के लिए २४ गौ के सम्बन्धी पशुओं  
का आलम्बन होना चाहिए । संवत्सर में १२ मास होते हैं । संवत्सर सब कुछ है ।  
अश्वमेध सब कुछ है । यह सब है सब कुछ की उपलब्धि तथा प्राप्ति के लिए ॥१॥  
ब्राह्मणम् (५-३)



## ब्राह्मण ४

प्रत्यृतु पश्वालम्भः

एतेन हेन्द्रोनो दैवापः शौनकः जनमेजयः पारिक्षितं याजयाँचकार  
तेनेष्ट्वा सर्वा पाप कृत्यां सर्वा ब्रह्महत्यामपजघान सर्वा ह वै पापकृत्यां  
सर्वा ब्रह्महत्यामपहन्ति योऽश्वमेधेन यजते ॥१॥

इन्द्रोत दैवाप शौनक ने जनमेजय पारिक्षित के लिये यह यज्ञ किया था ।  
उसको करके उसने पापों तथा ब्रह्म हत्याओं को दूर कर दिया । जो अश्वमेध यज्ञ  
करता है, वह सब पापों तथा ब्रह्महत्या को दूर कर देता है ॥१॥

तदेतद् गाथा ऽ भिगीतम् । आसन्दीवति धान्यादं रुक्मिणं हरित  
संजम् । आवघ्नादश्वं सारंगं देवेभ्यो जनमेजयऽइति ॥२॥

गाथा ने यही गाया है कि आसन्दीवत् में जनमेजय ने देवताओं के लिए धान्य खाते  
वाला, स्वर्ण आभूषण वाला, हरी मालाओं वाला, चितकबरा घोड़ा बाँधा था ॥२॥

एतेऽएव पूर्वोऽअहनी । ज्योति रति रात्रस्तेन भीमसेन मेतेऽएव  
पूर्वो अहनी गौरति रात्रस्तेनोग्रसेनमेते ऽ एव पूर्वोऽअहनी आयुरति रात्रस्तेन  
श्रुतसेनमित्येते पारि क्षितीयास्तदेतद्गाथ याऽभिगीत पारिक्षि ता  
यजमाना ऽ अश्वमेधेः परोऽवरम् अजहुः कर्म मापकं पुण्याःपुण्येन  
कर्मणेति ॥३॥

पहले दो दिन के यज्ञ होते हैं और ज्योति अतिरात्र । इससे भीमसेन के  
लिए यज्ञ किया था । पहले दो दिन के वही यज्ञ और गो अतिरात्र । इससे उग्रसेन



के लिए यज्ञ किया था । वही दो दिन के यज्ञ और आयुष अतिरात्र । इससे श्रुतसेन के लिए यज्ञ किया था । ये पारिक्षितीय हैं इनके विषय में गाथा गाती है कि पारिक्षित यजमानों ने अश्वमेध यज्ञों से एक दूसरे के पीछे पुण्य कर्मों द्वारा पाप कर्मों को हटा दिया ॥३॥

एते ऽ एव पूर्वेऽअहनी । अभिजिदतिरात्रस्तेन ह पर ऽ आ ह्णार ऽ ईजे कौसल्यो राजा तदेतद् गाथयाऽभिगीत मह्णारस्य परः पुत्रोऽश्वं मेध्यमवन्धयत् हैरण्य नाभः कौशल्यो दिशः पूर्णाऽग्रम् हतेति ॥४॥

पहले दो दिन के वही यज्ञ और अभिजित अतिरात्र । इनसे कौसल्य राजा पर आह्वार ने अश्वमेध किया था । गाथा में इसका वर्णन है कि आह्वार के पुत्र पर हैरण्यनाभ कौसल्य ने यज्ञ के घोड़े को बंधवाया था और पूर्ण दिशाओं को बढ़ाया था ॥४॥

एते ऽ एव पूर्वे ऽ अहनी । विश्वजिदतिरात्रस्तेन ह पुरुकुत्सो दोग्रहेणेजऽऐश्वकाको राजा तस्मादेतदृषिणाऽभ्यनूक्तमस्माकमत्र पितरस्त ऽ आसन्तसप्त ऽ ऋषयो दोग्रहेण वध्यमानऽइति ॥५॥

इन्हीं पहले दो दिन के यज्ञों और विश्वजित अतिरात्र से पुरुकुत्स ऐश्वक ने दोग्रह अर्थात् अश्वमेध किया था । इसीलिए ऋ० वे० ४।४२।८ में मंत्र है—

अस्माकमत्र पितरस्त आसन्तसप्त ऋषयो दोग्रहे वध्यमाने ॥५॥

एते ऽ एव पूर्वे ऽ अहनी । महाव्रतमतिरात्रस्तेन ह मरुत आविक्षित ऽ ईज ऽ आयोगवो राजा तस्य ह ततो मरुतः परिवेष्टारोऽग्निः क्षता विश्वे देवाः सभासदो बभूवुस्तदेतद्गाथयाऽभिगीतं मरुतः परिवेष्टारो मरुत्स्यावसन्गृहे । आविक्षि तस्याग्नि क्षताविश्वे देवाः सभासद ऽ इति मरुतो ह वै तस्य परिवेष्टारोऽग्निः क्षता विश्वे देवाः सभासदो भवन्ति योऽश्वमेधेन यजते ॥६॥

यही पहले दो दिन के यज्ञ तथा महाव्रत अतिरात्र । इससे “आयोगव राजा मरुत आविक्षित” ने अश्वमेध यज्ञ किया था । इससे मरुत इसके संरक्षक, अग्नि क्षता, विश्वेदेवा सभासद हो गये । गाथा में यही कहा गया है । मरुत अवक्षित के घर में मरुत संरक्षक हो गये, अग्नि क्षता, और विश्वेदेवा सभासद, जो अश्वमेध यज्ञ करता है उसके अवश्य ही मरुत संरक्षक हो जाते हैं, अग्नि क्षता, और विश्वेदेवा सभासद ॥६॥

एते ऽ एव पूर्वेऽअहनी । आप्तोर्यामोऽतिरात्रस्तेन हैतेन क्रैव्यऽईजे पाञ्चाली राजा क्रिवयऽइति ह वै पुरा पञ्चालानाचक्षते तदेतद्गाथया



( ९० )

ऽभिगीतम् अश्वं मेघ्यमालभते क्रिवीणमिति पूरुषः । पाञ्चालः परिवक्राम  
सहस्रशत दक्षिणमिति ॥७॥

यही पहले दो दिन के यज्ञ और आप्तोर्याम अतिरात्र इससे पंचाल देश के  
राजा क्रैव्य ने अश्वमेध यज्ञ किया था । पंचाल का पहला नाम क्रिवि था । अतः गाथा  
में लिखा है—कि परिवक्रा नगरी में क्रिवियों के राजा पांचाल ने यज्ञ के लिए एक  
घोड़ा बाँधा और एक लक्ष गायें दक्षिणा में दी ॥७॥

अथ द्वितीयया । सहस्रमासन्नयुता शता च पञ्चविंशति दिक्षो  
दिक्तः पञ्चालानामां ब्राह्मणा यां विभेजिर ऽ इति ॥८॥

इस सम्बन्ध में दूसरी गाथा भी है कि पांचाल देश के ब्राह्मणों ने भिन्न भिन्न  
दिशाओं से आकर सहस्रयुत और २५ सौ गायों को आपस में बटवारा किया था ॥८॥

त्रिवृदग्निष्टोमः । पंचदशऽउक्थ्यः सप्तदशं तृतं यमहः सोक्थकमेक  
विंश षोडशो पञ्चदशो रात्रिस्त्रिवृत्संधि रित्येषोऽनुष्टुप्सम्पन्नस्तेन  
हैतेन ध्वसा द्वैतवनऽईजे मात्स्य राजा यत्रैतद्वैतवनं सरस्तदेतद्-  
गाथयाऽभिगीतं चतुर्दश द्वैतवनो राजा सग्रामजिह्वयान् । इन्द्राय  
वृत्रघ्नेऽबध्नात्तस्माद्वैतवनं सरऽइति ॥९॥

अग्निष्टोम त्रिवृत् होता है, उक्थ्य १५, तीसरे दिन का उक्थ्य स्तोत्र १७,  
षोडश २१. रात्रि स्तोत्र १५, सन्धि, त्रिवृत्—यह अनुष्टुप् युक्त यज्ञ है । इससे मत्स्य  
देश के राजा ध्वसा द्वैतवन नामक स्थान में यज्ञ किया था, जहाँ द्वैतवन नाम की  
झील भी है । इसकी भी गाथा है—युद्ध में जीतने वाले द्वैतवन राजा ने १४ घोड़ों  
को वृत्रघ्न इन्द्र के लिए ( अश्वमेध यज्ञ में ) बाँधा था उसी से द्वैतवन नामक  
झील है ॥९॥

चतुर्विंश पवमानाः । त्रिवृदभ्यावर्तं चतुश्चत्वारिंशः  
पवमानाऽएक विंशमभ्यावर्तमष्टा चत्वारिंशः पवमाना स्त्रयस्त्रिंशः  
पवमानाऽष्टाऽग्निष्टोमसामा त्रिंशान्युक्थान्येक विंशः षोडशी  
पञ्चदशी रात्रि स्त्रिवृत्संधि रिति ॥ १० ॥

चतुर्विंश स्तोमों में ३ पवमान स्तोम त्रिवृत् में दुहराये हुये ४४ मंत्रों के  
पवमान एकविंश में दुहराये गये, ४८ मंत्रों के पवमान, ३३ में दोहराये हुये अग्निष्टोम  
तक ३२ के साम, उक्थ, एक विंश में साम षोडशी, १५ में रात्रि स्तोम, त्रिवृत् में  
सन्धि ॥१०॥

एतद्विष्णो क्रान्तम् । तेन हैतेन भरतो दोष्यन्तिरीजे तेनेष्टवेमां  
व्यष्टि व्यानशे येय भरतानां तदेतद् गाथयाऽभिगीतमष्टासप्तति भरतो



दौष्यन्तिर्यमुनामनु गङ्गायां वृत्रघ्नेऽवघ्नात् पञ्च पञ्चाशत्  
हयानिति ॥११॥

यह है विष्णु का क्रान्त । इससे भरत दौष्यन्ति ने यज्ञ किया था और उस सब सम्पत्ति को पाया, जो इस समय भरतों को प्राप्त है, गाथा में इसी का वर्णन है:—भरत दौष्यन्ति ने वृत्रघ्न के लिए ७८ घोड़े यमुना पर और ५५ गङ्गा पर बंधे थे ॥ ११ ॥

अथ द्वितीयया । त्रयस्मिं श शत् राजाऽश्वान्वद्ध्वाय मेघ्यान् ।  
सौद्युम्निरत्यष्टा दन्यान्भक्षन्मायवत्तरऽ इति ॥१२॥

एक और गाथा है कि मायावान् सौद्युम्न राजा ने १३३ घोड़े अश्वमेघ के लिये बांध कर माया रहित राजाओं पर आधिपत्य कर लिया ॥१२॥

अथ तृतीयया । शकुन्तला नाडपित्यप्सरा भरतं दधे । परः  
सहस्रानिन्द्रा याश्वान्मेघ्यान्यऽ आहरद्विजित्य पृथिवीं सर्वामिति ॥१३॥

तीसरी गाथा है कि नाडपितृ में अप्सरा शकुन्तला ने भरत को जना, जिसने सब पृथिवी को जीत कर यज्ञ के योग्य एक हजार घोड़ों को इन्द्र के लिए बाँधा ॥१३॥

अथ चतुर्थ्या । महदद्य भरतस्थ न पूर्वं नापरे जनाः । दिवं मर्त्यै-  
ऽश्व बाहुभ्यां नो दापुः पञ्च मानवाऽइति ॥१४॥

चौथी गाथा है कि भरत की बड़ाई को न पहले किसी ने पाया और न पीछे । न पाँचों जातियों ने । कोई मनुष्य आकाश को भुजाओं से नहीं छू सकता ॥ १४ ॥

एकविंश स्तोमेन । ऋषभो । याज्ञतुरऽईजे शिवक्नानां राजा  
तदेतद् गाथयाऽभिगीत याज्ञतुरे यजमाने ब्रह्मणाऽऋषभे जनाः अश्वमेघे धनं  
लब्ध्वा विभजन्ते स्म दक्षिणाऽइति ॥१५॥

शिवक्नो के राजा ऋषभ याज्ञतुर ने एक विंश स्तोम से यज्ञ किया था । उसकी यह गाथा है :—कि जब याज्ञतुर ऋषभ ने अश्वमेघ यज्ञ किया था, तब ब्राह्मणों ने दक्षिणा में धन प्राप्त करके बाँटा था ॥१५॥

त्रयस्मिं शस्तोमेन । शोणः सात्रासाहऽईजे पाञ्चाली राजा  
तदेतद् गाथया भिमीतः सत्रा साहे यजमानेऽश्वमेघेन तौर्वशाः ।  
उदीरते त्रयस्त्रिंशाः षट् सहस्राणि वर्मिणामिति ॥१६॥



पञ्चाल के राजा शोण सात्रासाह ने ३३ स्तोमों से यज्ञ किया था । उस गाथा यह है कि जब सात्रासाह राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया तो ३३ स्तोम तीक्ष्ण या घोड़े बन कर आ गये और ६००० (छ हजार) योद्धा थे ॥१६॥

अथ द्वितीयया । षट् षट् षड्वा सहस्राणि यज्ञे कोकपितु स्तोम उदीरते त्रयस्त्रिंशः षट् सहस्राणि वमिणामिति ॥१७॥

दूसरी गाथा है कि हे कोक के पिता तेरे यज्ञ में ३३ स्तोम आये छः हजार छः गुने घोड़ों के समान और छः हजार योद्धा ॥ १७ ॥

अथ तृतीयया । सात्रासाहे यजमाने पञ्चाले राज्ञि सुस्रिजि अमाद्यदिन्द्रः सोमेन तृप्स्वन्ब्राह्मणा धनैरिति ॥१८॥

तीसरी गाथा यह है कि सुन्दर माला वाले पञ्चाल राजा सात्रासाह के यज्ञ इन्द्र ने सोम से और ब्राह्मणों ने धनों से आनन्द मनाया ॥१८॥

गोविन्दतेन शतानीकः । सात्राजितऽईजे काश्यस्याश्वमादाय ततो हैतदविकाशयोऽग्नीन्नादधत्तऽआत्त सोमपीक्षाः स्मऽइति वदन्तः ॥१९॥

शतानीक सात्राजित ने काश्य के घोड़े को लेने के उपरान्त गोविन्द अश्वमेध यज्ञ किया । तब से काशी के लोग अग्नियों को नहीं रखते । वे कहते हैं कि हम लोगों से सोम छीन लिया गया ॥१९॥

तस्य विधा चतुर्विंशति पवमानाः । त्रिवृदभ्यावर्तं चतु चत्वारिंशति पवमानाऽएकं विंशत्याज्यानि तृणवान्यकथा न्येकविंशानि पृष्ठानि षट्त्रिंशः पवमानास्त्रयस्त्रिंशः मभ्यावर्तमाग्निष्टोमसामादेकविंशान्युक्तान्येकविंशः षोडशी पञ्चदशो रात्रिस्त्रिवृत्सन्धिः ॥२०॥

गोविन्द अश्वमेध की विधि इस प्रकार है :—पवमान स्तोम २४ स्तोम त्रिवृत् में दुहराये गये हुये हैं । पवमान ४४ में आज्य २१ में, उक्थ २७, में पृष्ठ २१ में, पवमान में ३६ और दुहराते हुए ३३ में अग्निष्टोम साम तक, उक्थ २१ षोडशी २१ में रात्रि १५ में और सन्धि स्तोम त्रिवृत् में ॥२०॥

तदेतद् गाथयाऽभिगीतम् । शतानीकः समन्तासु मेध्यः सात्राजितं हयम् । आदत्तं यज्ञं काशीनां भरतः सत्वतामिवेति ॥२१॥

इस विषय में भी गाथा है :—शतानीक सात्राजित ने काशी वालों के यज्ञ पड़ोस में एक यज्ञ के घोड़े को बांध लिया, जैसे :—भरत ने सत्वत लोगों को बांध लिया था ॥२१॥



( ९३ )

अथ द्वितीयया । श्वेतं समन्तासु वशं चरन्तं शतानीको धृत  
राष्ट्रस्य मेध्यम् । आदाय सह्वा दशमास्यमश्वं शतानीको गोविनतेन  
हेजऽइति ॥२२॥

दूसरी कथा है :—शतानीक ने पड़ोस में धृतराष्ट्र के श्वेत यज्ञ के घोड़े को  
जो स्वच्छन्द विचरण कर रहा था, दशवें मास में उसे पकड़ लिया । शतानीक ने  
गोविनत यज्ञ किया ॥२२॥

अथ चतुर्थ्या । महद्यश भरतानां नपूर्वं नापरे जनाः । दिवंमर्त्यं ऽ इव  
पक्षाभ्यां नो दापुः सप्त मौनिवाऽऽइति ॥२३॥

चौथी कथा इस प्रकार है कि भरतों की बढ़ाई को, न किसी ने पहिले पाया  
और न पीछे और न ७ जातियों ने । जैसे :—मनुष्य अपनी बगलों से आकाश को  
छू नहीं सकता ॥२३॥

अथातो दक्षिणानाम् । मध्यं प्रति राष्ट्रस्य यदन्यद् भूमेश्च  
पुरुषेभ्यश्च ब्राह्मणस्य च वित्तात्प्राची दिग्घोतुर्दक्षिणा ब्रह्मणः प्रतीच्यध्व-  
योऽदीच्युदगातुस्तदेव होतृकाऽअन्वाभक्ता ॥२४॥

अब दक्षिणाओं के विषय में कहा जा रहा है, राष्ट्र के मध्य में ब्राह्मण की  
भूमि, पुरुष और घन को छोड़कर और जो कुछ है उसके पूर्व की दिशा में होता,  
दक्षिण में ब्रह्मा, पश्चिम में अध्वर्यु, उत्तर में उदगाता का भाग है तथा अन्य होता  
लोगों का भी उन्हीं के साथ बिभाजन किया गया है ॥२४॥

उदयनीयायां संस्थितायाम् । एकविंशतिं वशाऽअनू बन्ध्या  
ऽआलभते मैत्रा वरुणी वैश्वदेवी बार्हस्पत्याऽएतासां देवतानामाप्यै  
तद्यद् बार्हस्पत्यान्त्या भवन्ति ब्रह्मा वै बृहस्पतिस्तद् ब्राह्मण्येवान्ततः  
प्रति तिष्ठति ॥२५॥

उदयनीय आहुति की समाप्ति होने पर २१ बाँझ गायों का आलभन करते  
हैं, तथा ये गायें मित्र, वरुण, वैश्वदेव बृहस्पति आदि की हैं इन देवताओं के तृप्ति  
निमित्त । बृहस्पति की आहुति अन्त में इस निमित्त दी जाती है कि बृहस्पति ही  
ब्रह्मा है, तथा वह अपने में ही प्रतिष्ठित करता है ॥२५॥

अथ यदेक विंशतिर्भवन्ति । एक विंशो वा एष यऽएष तिपऽ  
द्वादश मासाः पञ्चर्जवस्त्रय ऽ इमे लोका ऽ असावादित्यऽ एक विंशत  
एतामभि सम्पदम् ॥२६॥



( ९४ )

२१ ही आहुतियाँ क्यों होती हैं ? यह जो तपता है अर्थात् सूर्य वह २१ है । १२ महीने ५ ऋतुयें, ३ ये लोक और २१ वाँ सूर्य यह सब मिल गया ॥२६॥

उदवसानीयाया ँ स ँ स्थितायाम् । चतस्रश्च जायाः कुमारी पञ्चमी चत्वारि च शतान्यनुचरीणां यथा समुदितं दक्षिणां ददाति ॥२७॥

उदवसानीय की समाप्ति पर ४ महिलायें, ५ वीं कुमारी और ४०० से अनुचारियों को इकरार के अनुसार दक्षिणा में देता है ॥२७॥

अथोत्तर ँ संवत्सर मृतुपशुभिर्यजते । षड्भिराग्नेयैर्वसन्ते षड्भिरैन्द्रैः ग्रीष्मे षड्भिः पार्जन्यैर्वा मास्तैर्वा वर्षासु षड्भिः मैत्रावरुणैः शरदि षड्भिरैन्द्रावैष्णवैर्हेमन्ते षड्भिरैन्द्रा बार्हस्पत्यैः शिशिरे षड्भिरवः संवत्सरः ऋतुष्वेवः संवत्सरे प्रतिनिष्ठति षट् त्रि ँ शदेते पशवो भवन्ति षट् त्रि ँ शदक्षरा बृहती बृहत्यामाधि स्वर्गो लोकः प्रतिष्ठितस्तद्वन्ततो बृहत्याव छन्दसा स्वर्गो लोके प्रतितिष्ठति ॥२८॥

अगले वर्ष ऋतु पशुओं से यज्ञ करता है, अग्नि के छः से वसन्त में, इन्द्र के छः से, ग्रीष्म में पर्जन्य या मास्तों के छ से, वर्षा में मित्र वरुण के छः से शरद में, इन्द्र, विष्णु के छः से, हेमन्त में, इन्द्र, बृहस्पति के छः से शिशिर में संवत्सर में छः ऋतुयें होती हैं । इस ऋतु वाले संवत्सर में प्रतिष्ठित होते हैं । ये ३६ पशु हुये । बृहती में ३६ अक्षर होते हैं । बृहती के सहारे ही स्वर्ग लोक है, इस प्रकार बृहती छन्द से अपने को स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित करता है ॥२८॥

ब्राह्मणम् ॥६॥ (५-४) तृतीय प्रपाठकः ॥ कण्डिका संख्या १०६।

इति पञ्चमोऽध्याय समाप्तः

अध्याय ६

ब्राह्मण-१

पुरुषमेधः

पुरुषो ह नारायणो ऽ कामयत । अतितिष्ठेय ँ सर्वाणि भूतान्यहं सेवेद ँ सर्वं ँ स्यामिति स ऽ एवं पुरुषमेधं पञ्च रात्रं यज्ञक्रतुमपश्यन् तमाहरत्तेनायजत तेनेष्ट्वा ऽ त्वं तिष्ठत्सर्वाणि भूतानीदं ँ सर्वमभवदति



तिष्ठति सर्वाणि भूता नोद ॥ सर्वं भवति यऽ एवं विद्वान्पुरुषमेधेन यजते  
यो वैतदेवं वेद ॥१॥

पुरुष नारायण ने चाहा कि मैं जीवों में सर्वोपरि हो जाऊँ । मैं ही सब कुछ हो जाऊँ । उसने इस पुरुषमेघ पंचरात्र यज्ञ क्रतु को देखा । उसको ले लिया । उस यज्ञ को किया । उस यज्ञ को करके जीवों में सर्वोपरि हो गया तथा इस संसार में वही सब कुछ हो गया । जो मनुष्य इस रहस्य को समझता है वा समझकर पुरुषमेघ यज्ञ करता है, वह सब जीवों में बड़ा तथा सब कुछ हो जाता है ॥१॥

तस्य त्रयो विंशद्विर्दीक्षाः । द्वादशोपसदः पञ्च सुत्याः सऽ एष चत्वारिंशद्रात्रः सदीक्षोपसत्कश्चत्वारिंशदक्षराविराट् तद्विराज-  
मभि सम्पद्यते ततो विराडजायत विराजोऽ अधि पूरुषऽ इत्येषा वै सा विराडेतस्याऽ एवैतद्विराजो यज्ञं पूरुषं जनयति ॥२॥

उसमें २३ दीक्षाएँ, १२ उपसद एवं ५ सुत्य होते हैं । दीक्षा और उपसद के सहित यह ४० यज्ञ हो जाता है । ४० अक्षर का ही विराट् होता है । इस प्रकार यह विराज हो जाता है;

“ततो विराडजाया विराजोऽ अधिपूरुषः” यजु० ३१।५,  
उससे विराट् उत्पन्न हुआ । विराट् से पूरुष” । यह विराट् है । उसी विराज से यज्ञ पूरुष उत्पन्न करता है ॥२॥

ता, वाऽएताः । चतस्रो दशतो भवन्ति तद्यदेता श्चतसू दशतां भवन्त्येषां चैव लोकानामाप्यै दिशां चेममेव लोक प्रवमया दशताऽऽप्नुवन्तन्तरिक्षं द्वितीयया दिवं तृतीयया दिशश्चतुर्थ्या तवैवेतद्य जमानऽ इममेव लोक प्रथमया दशताऽऽप्नोत्यन्तरिक्षं द्वितीयया दिवं तृतीयया दिशश्चतुर्थ्येतावद्वाऽइदं सर्वं यावदिमे च लोका दिशश्च सर्वं पूरुषमेघः सर्वस्याप्यै सर्वस्याव रुद्धयै ॥३॥

ये ४० दिन ४ दशत में विभक्त होते हैं । ४ दहाइयाँ इसलिये कि इन से लोकों तथा दिशाओं की प्राप्ति करनी है । पहली दहाई से इस लोक की प्राप्ति करता है, दूसरी से अन्तरिक्ष तथा तीसरी से चौथे लोक की प्राप्ति करता है । उस प्रकार यजमान भी पहली दहाई से इस लोक दूसरी से अन्तरिक्ष तीसरी से चौथे लोक और चौथी से दिशाओं की प्राप्ति करता है । यह संसार उतना ही है जितने ये ३ लोक तथा दिशाएँ हैं । पुरुषमेघ सबकी उपलब्धि के लिये “सब कुछ” है ॥३॥



( ९६ )

एका दशाग्निषोमीयाः पशवऽ उपवसथे । तेषां समानं कर्मकात्  
यूपाऽ एकादशाक्षरा त्रिष्टुब्जस्त्रिष्टुब्वीर्यं त्रिष्टुब्जं णैवैतद्वीर्यं  
यजमानः पुरस्तात्पाप्मानमपहते ॥४॥

अग्नि सोम के ११ पशु उपवास के दिन होते हैं । उनका कर्म समान है, ११  
यूप त्रिष्टुप् ११ अक्षर का होता है, त्रिष्टुप् वज्र है, वीर्य है, इस वज्र एवं वीर्य  
रूपी त्रिष्टुप् से यजमान पहले ही से पाप को दूर कर देता है ॥४॥

एकादशिनाः सुत्यासु पशवो भवन्ति । एकादशाक्षरा त्रिष्टुब्ज  
स्त्रिष्टुब्वीर्यं त्रिष्टुब्जं णैवैतद्वीर्यं यजमानः पुरस्तात् पाप्मानमपहते ॥५॥

सत्यां में ११ पशु होते हैं । त्रिष्टुप् में ११ अक्षर होते हैं त्रिष्टुप् वज्र है  
त्रिष्टुप् वीर्य है, इस वज्र तथा वीर्य रूपी द्वारा वह सब पापों को दूर कर  
देता है ॥५॥

यद्वैकादशिना भवन्ति । एका, दशिनी वाऽइदं सर्वं प्रजापति  
होकादशिनी सर्वं हि प्रजापतिः सर्वं पुरुषमेधः सर्वस्याप्त्यै सर्वं  
स्यावरुद्वयं ॥६॥

ये ११ क्यों होते हैं ? वह सब संसार ११ वाला है, प्रजापति ११ वाला  
है, प्रजापति सब कुछ है । सबकी उपलब्धि के निमित्त पुरुष मेघ सब कुछ है ॥६॥

स वाऽएथ पुरुषमेधः पञ्चरात्री यज्ञं क्रतुर्भवति । पाङ्क्तो यज्ञ  
पाङ्क्त पशु पञ्चर्तवःसंवत्सरो यत्किञ्च पञ्चविधमधि देवतमध्यात्  
तदेनेन सर्वमाप्नोति ॥७॥

यह पुरुषमेघ पञ्चरात्र यज्ञ है यज्ञ पांच वाला है, संवत्सर में पांच ऋतु  
होती हैं । जो कुछ पांच प्रकार का अधिदैवत या अध्यात्म है, वह सब इसके द्वारा  
प्राप्त होता है ॥७॥

तस्याग्निष्टोमः प्रथममहर्भवति । अथोक्थ्योऽयाति रात्रोऽथोक्थ्यो  
थाग्निष्टोमः स वाऽएषऽउभयतोऽ ज्योति रुभयतऽउक्थ्यः ॥८॥

प्रथम दिन अग्निष्टोम होता है फिर उक्थ्य, अतिरात्र, उक्थ्य, अग्निष्टोम  
इस प्रकार इस यज्ञ के दोनों ओर ज्योतिर्या हैं तथा दोनों ओर उक्थ्य ॥८॥

यवमध्यो पञ्चरात्रोभवति । इमे वै लोकाः पुरुषमेधऽउभयतो  
ज्योतिषी वाऽइमे लोकाऽअग्निनेतऽआदित्येना मुतस्तस्मादुभयतो ज्योति  
रन्नमुत्थाऽआत्माऽतिरात्र स्तद्यदेताऽऽउक्थ्यावति रात्रमभितो भवतस्ता



मादयमात्माऽन्नेन परिवृढोऽथ यदेष वर्षिष्ठोऽति रात्रोऽह्ना समध्ये तस्माद्यवमध्यो युते ह वै द्विषन्तं भ्रातृव्यम यमेवास्ति नास्य द्विषन्भ्रातृव्य-  
ऽइत्याहुयंऽएवं वेद ॥९॥

यह पञ्चरात्र (पुरुष मेघ) यज्ञ जी की आकृति का है। पुरुषमेघ में लोक ही है, इन लोकों के दोनों सिरों पर ज्योति होती हैं, इधर अग्नि और उधर आदित्य हैं इसलिये दोनों ओर प्रकाश हुआ। अन्त्य उक्थ्य एवं आत्मा अतिरात्र है, ये दोनों अर्थात् उक्थ्य एवं अतिरात्र दोनों ओर हैं अतः यह आत्मा अर्थात् शरीर अन्न से घिरा हुआ है। यह जो अतिरात्र है वह इन सबमें मोटा है और इन सब दिनों के बीच में है। अतः इसकी उपमा जी के समान है। क्योंकि जी मध्य में मोटा होता है। जो इस तत्त्व को जानता है, वह अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकता है ऐसा कहा जाता है कि उसके शत्रु कोई भी नहीं होते ॥९॥

तस्यायमेव लोकः प्रथममहः। अयमस्य लोको वसन्त ऋतुर्यदूर्ध्वं मस्माल्लोकादर्वाचीनमन्तरिक्षात्तद् द्वितीय महस्तद्वस्य ग्रीष्मऽऋतुरन्तरिक्ष मेवास्य मध्यममह रन्तरिक्षमस्य वर्षाशरदावृत् यदूर्ध्वमन्तरिक्षादर्वाचीन दिवस्तच्चतुर्थ महस्तद्वस्य हेमन्तऽऋतुर्द्यौरेवास्य पञ्चम महद्यौरस्य शिशिरऽऋतुरित्यधि देवतम् ॥१०॥

उसका प्रथम दिवस यह ही लोक है और वसन्त ऋतु भी यह ही लोक है। जो इस लोक से ऊपर और अन्तरिक्ष लोक से नीचे है यही दूसरा दिवस है। वह उसका ग्रीष्म ऋतु है। अन्तरिक्ष इसका मध्य का तृतीय दिवस है। यही उसका वर्षा ऋतु है। जो अन्तरिक्ष से ऊर्ध्व तथा द्यौ के नीचे है वह चतुर्थ दिवस है यही उसका शिशिर ऋतु है। यह अधि दैवत वर्णन हुआ ॥१०॥

अथाध्यात्मम्। प्रतिष्ठैवास्य प्रथममहप्रतिष्ठोऽस्य वसन्तऽऋतु-  
यदूर्ध्वं प्रतिष्ठायाऽअर्वाचीनं मध्यात्तद्वितीय महस्तद्वस्य ग्रीष्मऽऋतुर्मध्य-  
मेवास्यमध्यममहर्मध्यमस्य वर्षा शरदावृत् यदूर्ध्वं मध्यादर्वाचीनं शीर्ष्णं  
स्तच्चतुर्थमहस्तद्वस्य हेमन्तऽऋतुः शिरऽएवास्य पञ्चमहः शिरोऽस्य  
शिशिरऽऋतुरेवमिमे च लोकाः संवत्सरश्चात्मा च पुरुषमेघ मभि सम्पद्यन्ते  
सर्वं वाऽहमे लोकाः सर्वं संवत्सरः सर्वमात्मा सर्वं पुरुषमेघः सर्वस्याप्त्यै  
सर्वस्यावरुद्ध्यै ॥११॥

अब अध्यात्म विषय कहा जाता है उसे सुने—प्रथम दिवस पाद है इसकी प्रतिष्ठा वसन्त ऋतु है। जो पैरों से ऊपर तथा कमर से नीचे है यही दूसरा दिवस



( ९८ )

है ग्रीष्म ऋतु उसकी ही प्रतिष्ठा है । कमर इसका तृतीय दिवस है । वर्षा तथा शरत् इसके ऋतु हैं । कमर से ऊपर तथा शिर के नीचे का भाग चतुर्थ दिवस है इसका हेमन्त ऋतु है । शिर इसका पञ्चम दिवस है इसका शिशिर ऋतु है । इस प्रकार लोक, संवत्सर, शरीर से सब पुरुषमेघ के बराबर होते हैं । यही लोक सब कुछ है । संवत्सर ही सब कुछ है, आत्मा सब कुछ है, सबकी उपलब्धि के लिये पुरुषमेघ सब कुछ है ॥११॥

ब्राह्मणम् ११ (५-१)

ॐ:०:ॐ

## ब्राह्मण २

ब्राह्मणाहीनामष्टा चत्वारिंशत्संख्यकानामग्निष्टे यूपे नियोजनादि

अथ यस्मात्पुरुषमेघो नाम । इमे वै लोका पूरयन्मव पुरुषो यो अं पवते सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात्पुरुषस्तस्य यदेषु लोकेष्वन्नं तदस्यान्नं मेघस्तद्यदस्यैतदन्नं मेघस्तस्मात्पुरुष मेघोऽद्यो यदस्मिन्मेघ्यान्पुरुषानालभते तस्माद्वेव पुरुषमेघः ॥१॥

इसका नाम पुरुषमेघ इसलिये कि यह लोक पुर है तथा पुरुष वह है जो बहता है । वह इस पुर में लेटा हुआ है, अतः वह पुरुष है इन लोकों में जो अन्न है, वह इसका मेघ है । अतः इसका पुरुषमेघ है तथा चूँकि इसमें मेघ्य पुरुषों का आलमन (स्थापन) होता है इसलिये इसका नाम पुरुषमेघ है ॥१॥

तान्वै मेघ्यमेऽहन्नालभते । अन्तरिक्षं वै मध्यममहरन्तरिक्षमु वै सर्वेषां भूतानामायतनमथोऽन्नं वाऽएते पशवऽउदरं मध्यममहरुदरे तदन्नं दधाति ॥२॥

इन सबका आलमन (स्थापन) मध्य दिवस में होता है । मध्य दिवस ही अन्तरिक्ष है । सब प्राणियों का निवास स्थान अन्तरिक्ष ही है, ये सब पशु ही अन्न हैं, मध्य दिवस ही उदर है इस प्रकार उस अन्न को उदर में रखता है ॥२॥

तान्वै दश-दशालभते । दशाक्षरा विराट् विराडुक्कृत्स्नमन्नं कृत्स्नस्यैवानाद्यस्यावरुद्धयै ॥३॥

इस प्रकार उनका दश-दश का आलमन (स्थापन) होता है । दश अक्षर का विराट् है; पूर्ण अन्न विराट् ही है । चूँकि पूर्ण अन्न की प्राप्ति हेतु ॥३॥



( ९९ )

एकादश दशतऽआलभते । एकादशाक्षरा त्रिष्टुब्बञ्ज त्रिष्टुब्बोर्यं  
त्रिष्टुब्बश्चैवैतद्वीर्येण यजमानो मध्यतः पाप्मानमपहते ॥४॥

११ दहाईयां लेते हैं, ११ अक्षर त्रिष्टुप् में होते हैं । त्रिष्टुप् ही वज्र है, त्रिष्टुप् ही वीर्य है । इसी वज्र और वीर्य रूपी त्रिष्टुप् के द्वारा वह यजमान पापों को मध्य से ही प्रथक् कर देता है ॥४॥

अष्टाचत्वारिंशत् मध्यमे यूपऽआलभते अष्टाचत्वारिंश दक्षरा  
जगती जागताः पशवो जगत्वैवास्मै पशूनवरुद्धे ॥५॥

यूप के मध्य में ४८ का आलभन (स्थापन) होता है तथा ४८ अक्षर जगती छन्द में होते हैं । पशु जगती वाले होते हैं । वह यजमान के लिये जगती के द्वारा पशुओं की प्राप्ति करता है ॥५॥

एकादशैक दशेतरेषु । एकादशाक्षरा त्रिष्टुब्बञ्ज त्रिष्टुब्बोर्यं  
त्रिष्टुब्बञ्चैवैतद्वीर्येण यजमानोऽभितः पाप्मानमपहते ॥६॥

अन्यों में ११ त्रिष्टुप् ११ अक्षरों का हुआ करता है । त्रिष्टुप् ही वज्र है, त्रिष्टुप् ही वीर्य है, इस वज्र और वीर्य के द्वारा यजमान अपनी दोनों ओर से पापों को दूर करता है ॥६॥

अष्टाऽउत्तमानालभते । अष्टाक्षरा गायत्री ब्रह्म गायत्री तद् ब्रह्म  
वै तदस्य सर्वस्योत्तमं करोति तस्माद् ब्रह्मास्य सर्वस्योत्तममित्याहुः ॥७॥

उत्तम (अन्त) में ८ का आलभन (स्थापन) करता है । गायत्री में ८ अक्षर होते हैं । गायत्री ब्रह्म है । इस प्रकार ब्रह्म को इस संगार का अन्न बनाता है । अतः कहते हैं कि ब्रह्म ही इस जगत् का अन्तिम लक्ष्य है अथवा यों कहिये उसकी प्राप्ति अन्तिम वस्तु है ॥७॥

ते वै प्राजापत्या भवन्ति । ब्रह्म वै प्रजापति ब्राह्मो हि प्रजापति-  
स्तस्मा प्राजापत्या भवन्ति ॥८॥

ये सब प्रजापति के हुआ करते हैं, प्रजापति ही ब्रह्म है, क्योंकि प्रजापति में ही ब्रह्म के गुण हैं अतः ये सब प्रजापति के होते हैं ॥८॥

स वै पशूनुपा करिष्यन् एतात्तिस्रः सावित्री राहुतीर्जुहोति देव  
सविस्तवितुर्वरेण्यम् विश्वानि देव सवितरिति सवितारं प्रीणाति सोऽस्मै  
प्रोतऽएतान्पुरुषान्प्रसीति तेन प्रसूतानालभते ॥९॥

जब पशुओं को लाने वाले होते हैं, तो सविता देव के लिये ३ आहुतियाँ दी जाती हैं ।



( १०० )

१. देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय दिव्यो गन्धर्वः केतुः  
केतनः पुतातु वाचस्पतिं वाचनः स्वदतु । यजु० अ० ३०।१
२. तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।  
—यजु०
३. विश्वानि देव सवितर्दरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव  
यजु० ३०/१—१

इन वेद मन्त्रों से सविता को प्रसन्न करता है । वह सविता देव प्रसन्न होकर इन पुरुषों को प्रेरणा करता है और वह सविता देव द्वारा प्रेरित होकर ही इनका आलमन करता है ॥९॥

ब्रह्मणे ब्राह्मणमालभते । ब्रह्म वै ब्राह्मणो ब्रह्मैव तद्ब्रह्मणा समर्धयति, क्षत्राय राजन्यं क्षत्रं वै राजन्यः क्षत्रमेव तत्क्षत्रेण समर्धयति, मरुद्भ्यो वैश्यं विशो वै मरुतो विशमेव तद्वासा समर्धयति, तपसे शूद्रं तपो वै शूद्रस्तपऽएव तत्तपसा समर्धयत्येवमेता देवता यथा रूपं पशुभिः समर्धयति, ता एनं समृद्धाः समर्धयन्ति सर्वेः कामैः ॥१०॥

ब्रह्म के लिए ब्राह्मण का आलमन(स्थापन)किया जाता है । कुतोहि ब्राह्मण ही ब्रह्म है । इस प्रकार ब्रह्म को ब्रह्म से मिलता है । इसी प्रकार क्षत्र के लिए राजन्य को, इस प्रकार क्षत्र को क्षत्र से मिलता है । मरुतों के लिए वैश्य को, कुतोहि मरुत ही वैश्य है । इस प्रकार वैश्य को वैश्य मिलता है । तप के लिए शूद्र को मिलता है कुतोहि शूद्र ही तप है । इस प्रकार तप को तप से मिलता है । इनके रूपों के अनुसार वह इन देवताओं को पशुओं से सम्पन्न करता है । इस प्रकार सम्पन्न होकर वे यजमान को सब कामनाओं से सम्पन्न कर देते हैं ॥१०॥

आज्येन जुहोति । तेजो वा ऽ आज्यं तेजसैवांस्मिस्तत्तेजो देवा त्याज्येन जुहोत्येतद्वै देवानां प्रियं धार यदाज्यं प्रियेणैवैनान्धाम्ना समर्धयति वऽ एनं समृद्धाः समर्धयन्ति सर्वेः कामैः ॥११॥

घी की आहुति देता है, घी तेज है । तेज से ही इसमें तेज धारण करता है । अर्थात् घी की आहुति देता है, चूँकि घी देवताओं का प्रिय स्थान है । इस प्रकार इन सबको प्रियधाम से युक्त करता है । अतः सम्पन्न होकर वे सब कामनाओं के हेतु यजमान को सम्पन्न कर देते हैं ॥११॥

नियुक्तान्पुरुषान् । ब्रह्मा दक्षिणतः पुरुषेण नारायणेनाभिष्टोति सहस्रं शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षं सहस्रपादित्येतेन षोडशर्चेन षोडश कलं वा ऽ इदं सर्वं, सर्वं पुरुषमेधः सर्वस्याह्यं सर्वस्यावरुद्धयाऽइत्यमसीत्



( १०१ )

मसीत्युपस्तीत्येवैनमेतन्महयत् येवाथो यथैष तथनमेतदाह तत्पर्यग्नि  
कृताः पशवो वभूवुरसंज्ञप्ताः ॥१२॥

नियुक्त किये हुए पुरुषों की स्तुति दक्षिण की ओर ब्रह्मा पुरुष नारायण  
सूक्त द्वारा करता है वह मंत्र यह है—

सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्ष सहस्रायात् स भूमि सर्वतः ।

ऋग१० । ६० १।१-१६

- |                                         |                                        |
|-----------------------------------------|----------------------------------------|
| (१) सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्ष ०।    | (२) पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूताम् ०।    |
| (३) एतावानस्य महिमांतीः ०।              | (४) त्रिहादूर्ध्वं उदेत्पुरुषः ०।      |
| (५) तस्माद्विराडजायत विराजो ०।          | (६) यत्पुरुषेण हविषा देवा ०।           |
| (७) तं यज्ञं वर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं ०। | (८) तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भूतम् ०। |
| (९) तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि ०। | (१०) तस्मादश्वा अजायन्त ०।             |
| (११) यत्पुरुषं व्यदधुः ०।               | (१२) ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद ०।         |
| (१३) चन्द्रमा मनसो ०।                   | (१४) नाभ्या आसीदन्तरिक्षम् ।           |
| (१५) सप्तास्यासन्परिधयस्मिः ०।          | (१६) यज्ञेनयज्ञमयन्तदेवाः ।            |

ऋग० १०/९०(१-१६)

इस सूक्त में १६ मन्त्र हैं, दुनियाँ सोलह कला वाली है। पुरुषमेघ  
सब लोगों की उपलब्धि के लिए सब कुछ है। “तू ऐसा है तू ऐसा है।”  
यह कह कर उसकी स्तुति करता है। उसका यश या गुणगान करता है जैसा वह  
है वैसा ही उसको बताता है। पशु पर्यग्नि कृत तो हो चुके परन्तु अभी तक उसका  
वध नहीं हुआ है ॥१२॥

अथ है न वागम्युवाद । पुरुष मा सन्तिष्ठपो यदि स स्था-  
पयिष्यसि पुरुषऽएव पुरुष मत्स्य तीति तान्पर्यग्नि कृताने योदसृजत्तद  
देवत्या ऽ आहुतीरजुहोताभिस्ता देवताऽअप्रीणात्ताऽ एनं प्रीताऽअप्री-  
णान्त्सर्वेः कामैः ॥१३॥

तव एक वाक् ने उससे कहा ! हे पुरुष तू पुरुष को न मार । ऐसा करेगा  
तो पुरुष पुरुष को खा जायेगा, अतः अग्नि उनके चारों ओर घुमाने की पीछे उनको  
छाड़ दिया तथा उन्हीं देवताओं के लिए आहुतियाँ दे दीं । इस प्रकार उन देवताओं  
को प्रसन्न कर दिया । इस प्रकार प्रसन्न होकर उन्होंने अपनी कामनाओं को तृप्त  
किया ॥१३॥

आज्येन जुहोति । तेजो वाऽआज्यं तेजसैवास्मिंस्तत्तेजो  
वधाति ॥१४॥



( १०२ )

घी की आहुति देता है । घी तेज है । इस प्रकार तेज द्वारा तेज को वापस करता है ॥१४॥

एका दशिनैः स ं स्थापयति । एका दशक्षरा त्रिष्टुब्ज स्त्रिष्टुब्वीर्यन्त्रिष्टुब्ज ज्ञेयैवैतद्वीर्येण यजमानो मध्यतः पाप्मानमपहते ॥१५॥

११ यूपो से समाप्त करता है, त्रिष्टुप् ११ अक्षरों का होता है । त्रिष्टुब्ज है, त्रिष्टुप् वीर्य है, इस वज्र तथा वीर्यरूपी त्रिष्टुप् के द्वारा वह यजमान मध्य से पापों को दूर करता है ॥१५॥

उदय नीयाया ं संस्थितायाम् । एकादशशशाऽनुबन्ध्याऽआलभते मैत्रावरुणीर्वैश्व देवी बार्हस्पत्याऽएतासां देवतानामाप्यै तद्यद् बार्हस्पत्याऽअन्त्या भवन्ति ब्रह्म वै बृहस्पतिस्तदु ब्रह्मण्येवान्ततेः प्रति तिष्ठति ॥ १६॥

उदयनीय आहुतियों की समाप्ति पर ११ वाँझ गायों का आलभन (स्थापन) होता है—मित्र-वरुण, विश्वे देवों और बृहस्पति की । इन सब देवताओं की प्रसन्नता हेतु । बृहस्पति को अन्त की ही क्यों बृहस्पति ही सचमुच ब्रह्म है इस प्रकार अन्त में ब्रह्म में प्रतिष्ठित करता है ॥१६॥

अब यदेकादश भवन्ति । एकादशाक्षरा त्रिष्टुब्ज स्त्रिष्टुब्वीर्यन्त्रिष्टुब्ज ज्ञेयैवैतद्वीर्येण यजमानोऽन्ततः पाप्मानमपहते त्रैघातव्युदवसानीयाऽसावेव बन्धुः ॥१७॥

११ ही क्यों वाँझ गायों का अलभन होता (स्थापन) है ? क्योंकि त्रिष्टुप् में ११ अक्षर होते हैं त्रिष्टुप् ही वज्र है, त्रिष्टुप् ही वीर्य है, इस वज्र तथा वीर्यरूपी त्रिष्टुप् से यजमान बीच से ही पाप को दूर करता है । त्रैघातवी ही अन्तिम आहुति है । यही इसका बन्धु है ॥१७॥

अथातो दक्षिणानाम् । मध्यं प्रति राष्ट्रस्य यदन्यभूमेरुच ब्राह्मणस्तच्च वित्तात्सपुरुषं प्राची दिग्धोतुर्दक्षिणा ब्रह्मणः प्रतीच्य ध्वर्योर्दक्षिणा द्गातुस्तदेव होतृकाऽअन्वाभक्ताः ॥१८॥

अब दक्षिणा के विषय में कहा जा रहा है । ब्राह्मण की भूमि तथा सम्पत्ति को छोड़कर राष्ट्र के मध्य में जो कुछ है वह पूर्व दिशा के मनुष्यों सहित सम्पूर्ण होता की ही दक्षिणा हुआ करती है । दक्षिण की ब्रह्मा, पश्चिम की अन्न, उत्तर की उद्गाता, अन्य ऋत्विज इनके ही साक्षी होते हैं ॥१८॥

अथ यदि ब्राह्मणो यजेत । सर्वं वेदसं दद्यात् सर्वं वै ब्राह्मणं सर्वं ं सर्वं वेदसं ं सर्वं पुरुषमेधः सर्वस्याप्यै सर्वस्यावरुद्धयै ॥१९॥



इसके अनन्तर यदि ब्राह्मण यज्ञ करे तो अपना सर्वस्व दे देना चाहिये । ब्राह्मण सब है, सर्वस्व है, सबकी प्राप्ति के लिए पुरुषमेघ सब है ॥१९॥

अथात्मन्नग्नी समारोह्य । उत्तर नारायणेनादित्यमुपस्थाया  
पेक्षमाणोऽरण्यमभिप्रेयात्तदेव मनुष्येभ्यस्तिरोभवति यद्यु ग्रामे विवत्सेद-  
रण्योरग्नी समारोह्योत्तर नारायणेनैवादित्यमुपस्थाय गृहेषु प्रत्यवस्येदथ  
तान्यज्ञ क्रतूना हरेत यानभ्याप्नुयात्स वाऽएष न सर्वस्माऽअनुवक्तव्यः  
सर्वं हि पुरुष मेघो नेत्सर्वस्माऽ इवसर्वं ब्रवाणीति योऽवेव ज्ञात स्तस्मै  
ब्रूयादथ यो ऽ न् चानोऽय योऽस्य प्रियःस्यान्नेत्वेव सर्वस्माऽ इव ॥२०॥

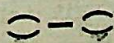
इसके अनन्तर अपने में दोनों अग्नियों का समारोप करके (यजु० ३१/१७-२२)  
उत्तर नारायण आदि निम्न मन्त्रों से :—

- (१७) ओं अदभ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्व कर्मणः समवर्तताग्रे० ॥
- (१८) ओं वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्० ॥
- (१९) ओं प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तरजायमानो बहुधा विजापते० ॥
- (२०) ओं यो देवेभ्यऽआतपति योदेवानां पुरोहितः ॥
- (२१) सचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे०
- (२२) ओं श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्० ॥

उत्तर नारायण आदि.....

से आदित्य की उपासना करके पीछे को बिना मुड़े जंगल को चला जाय । जंगल मनुष्यों से प्रथक् है । यदि ग्राम में रहना चाहे तो अरणी तथा उत्तरारणी में दो अग्नियों को लेवे और उत्तरनारायण मन्त्रों द्वारा आदित्य की उपासना करके घर पर रहे तथा जिन यज्ञों को कर सके करे । इस यज्ञ की शिक्षा सबको नहीं देनी चाहिये । पुरुष मेघ ही सब कुछ है, ऐसा नहीं है कि सब वस्तु सबको बता दी जाय, वताना उसी को चाहिये, जिसको मलीभांति जानते हों, अथवा यो कहिये जो वेद पाठी हो तो वही सबका प्रिय मित्र हो सकता है उसी की सिखाना चाहिये । हर एक व्यक्ति को नहीं । ब्राह्मणम् ॥२॥ (६-२)

इति षष्ठोऽध्यायः समाप्तः





## अध्याय ७

## ब्राह्मण १

## सर्वमेघः

ब्रह्म व स्यम्भु तपोऽस्तप्यत् । तदैक्षत न वै तपस्यानन्त्यमस्ति हन्ताह  
भूतेष्वात्मानं जुह्वानि भूतानि चात्नीति तत्सर्वेषु भूतेष्वात्मानं हुत्वा  
भूतानि चात्मन सर्वेषां भूतानां श्रेष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येत्यैव  
तद्यजमानः सर्वमेघे सर्वान्मेघान् हुत्वा सर्वेषां भूतानां श्रेष्ठ्यं स्वाराज्य-  
माधिपत्ये पर्येति ॥१॥

स्वयम्भु ब्रह्म ने तप किया । उसने कहा "तप में आनन्त्य नहीं है । मैं प्राणियों  
में अपनी आत्मा की आहुति दे दूँ और अपने आत्मा में प्राणियों की" । अपने आत्मा की  
प्राणियों में और प्राणियों को आत्मा में आहुति देकर सर्व प्राणियों में श्रेष्ठता, स्वाराज्य,  
आधिपत्य आदि की प्राप्ति करना । इस प्रकार जो यजमान सर्वमेघ यज्ञ करता है, वह  
सब प्राणियों में श्रेष्ठता, स्वाराज्य और आधिपत्य आदि को प्राप्त कर लेता है ॥१॥

स वाऽएष सर्वमेघो दशरात्री यज्ञ क्रतुर्भवति । दशाक्षरा विराट्  
विराड् कृत्स्नमन्नं कृत्स्नस्यैवान्नाद्यस्यावरुद्धयैतस्मिन्नग्निं पराध्यै चितोति  
परमो वाऽएष यज्ञ क्रतूनां यत् सर्वमेघः परमेणैवैनं परमतां गमयति ॥२॥

यह सर्वमेघ यज्ञ दशरात्र यज्ञक्रतु होता है अथवा यों कहिये वह यज्ञक्रतु १० दिन  
में पूरा होता है । विराट् में १० अक्षर होते हैं विराट् ही पूर्ण अक्षर है । पूर्ण अक्षर की  
प्राप्ति के निमित्त यह यज्ञ किया जाता है । इसमें सबसे बड़ी वेदी बनाई जाती है जो  
कि सर्वमेघ यज्ञ सब यज्ञों में बड़ा होता है । इसी बड़े यज्ञ के द्वारा श्रेष्ठता को प्राप्त  
करता है ॥२॥

तस्याग्निष्टुदग्निष्टोमः प्रथममहर्भवति । अग्निं वाऽग्निष्टुदग्निष्टो-  
मोग्निमुखाऽऽ वै सर्वे देवाः सर्वेषां देवानामाप्यै तस्याग्नेया ग्रहा  
भवन्त्याग्नेय्यः पुरोरुचः सर्वमाग्नेयमसदिति ॥३॥

प्रथम दिन अग्निष्टुत अग्निष्टोम यज्ञ होता है । अग्नि ही अग्निष्टुत अग्निष्टोम  
है । वे सब देव अग्नि मुख हैं । सब दोनों की प्राप्ति के लिये । उसके अग्नि ही के  
ग्रह होते हैं । पुरोरुच भी अग्नि के ही होते हैं, जिससे सब कुछ अग्नि का हो ॥३॥



( १०५ )

इन्द्रस्तुदुक्थ्यो द्वितीयमहर्भवति । इन्द्रो वै सर्वे देवाः सर्वेषां देवानामप्यै तस्यैन्द्रा ग्रहा भवन्त्यैन्द्रयः पुरोरुचः सर्वमैन्द्रमसदिति ॥४॥

द्वितीय दिन इन्द्र-स्तुत उक्थ्य होता है । सब देवों की प्राप्ति हेतु इन्द्र ही सब देव है । उसके ग्रह भी इन्द्र के होते हैं । इससे सब कुछ इन्द्र सम्बन्धी हो ॥४॥

सूर्यस्तुदुक्थ्य स्तृतीयमहर्भवति । सूर्यो वै सर्वे देवाः सर्वेषां देवानामप्यै सौर्या ग्रहा भवन्ति सौर्यः पुरोरुचः सर्व सौर्यमसदिति ॥५॥

तृतीय दिन सूर्य-स्तुत उक्थ्य होता है । सब देवों की प्राप्ति के लिये सूर्य सब देव है, उसके ग्रह भी सूर्य के होते हैं, और पुरोरुक् भी सूर्य के हैं । इससे सब कुछ सम्बन्धी हो ॥५॥

वैश्व देवश्चतुर्थमहर्भवति । विश्वे वै सर्वे देवाः सर्वेषां देवानामप्यै तस्य वैश्य देवा ग्रहा भवन्ति वैश्वदैव्यः पुरोरुचः सर्व वैश्वदेवमसदिति ॥६॥

चतुर्थ दिन वैश्व दैव होता है । सब देवों की प्राप्ति के लिये विश्वदेव सब देव है । ग्रह भी वैश्व देव होते हैं और पुरोरुक् भी वैश्वदेव ही । इससे सब कुछ वैश्वदेव हो ॥६॥

आश्वमेधिकं मध्यमं पञ्चममहर्भवति । तस्मिन्नश्व मेध्यमालभतेऽश्वमेधस्यैवाप्त्यै ॥७॥

पञ्चम दिवस मध्य आश्वमेधिक यज्ञ होता है, उस दिन मेध्य अश्व का आलभन (प्राप्त) होता है वह अश्वमेध की प्राप्ति के लिए ॥७॥

पौरुषमेधिकं मध्यमं षष्ठमहर्भवति । तस्मिन्नश्व मेध्यमालभते पुरुष मेघस्यैवाप्त्यै ॥८॥

षष्ठ दिवस मध्य पौरुषमेधिक यज्ञ होता है, उसमें मेध्य पुरुषों का आलभन (स्पर्श) होता है । पुरुष मेघ की प्राप्ति के लिए ॥८॥

अप्तोर्यामः सप्तममहर्भवति । सर्वेषां यज्ञक्रतूनामाप्त्यै तस्मिन्त्सर्वा न्मेध्यानालभते यच्च प्राणि यच्चा प्राण वपा वपावतां जुहोति त्वचऽउत्कर्तमवपाकानां सन्निश्चमोषधिवनस्पतीनां प्रकिरन्ति शुष्काणां चाद्राणां चान्नमन्न जुहोत्यन्नस्यान्नस्याप्त्यै सर्व सर्वस्मै जुहोति सर्वस्यावरुद्धयै प्रातः सवने हुतासु वपास्वेवमेव तृतीय सवने हुतेषु हविःषु ॥९॥

सप्तम दिवस सब यज्ञों की प्राप्ति हेतु आप्तोर्याम होता है । उसमें सब मेध्यों का आलभन (प्राप्ति) हुआ करता है, प्राण वाले और बिना प्राण वाले दोनों प्रकार के ।



( १०६ )

वपा वालों की वपा की आहुति दी जाती है । जिसमें वपा नहीं, उनकी त्वचा के टुकड़े २ काटकर औषधि-वनस्पतियों के भी टुकड़े २ काटकर, सूखे और गीले दोनों प्रकार के अग्नियों की आहुति दी जाती है । इस हेतु अन्न की प्राप्ति के लिए सब अग्नियों की आहुति देता है, सबके लिए आहुति देता है । सबकी प्राप्ति के निमित्त अथवा सबकी उपलब्धि हेतु । प्रातः सवन में वपा की आहुतियाँ देने के उपरान्त तथा तृतीय सवन हवियों की आहुति देने के उपरान्त— ॥९॥

त्रिणव ष्टम महर्भवति । वज्रो वै त्रिणवो वज्रेण खलु वै क्षत्रं, स्पृतम् तद् वज्रेणो क्षत्रं, स्पृणोति ॥१०॥

अष्टम दिवस त्रिणव होता है, २७ स्तोमों की इष्टि क्योंकि त्रिणव वज्र है, वज्र से ही क्षत्र प्राप्त होता है वज्र के द्वारा ही सब क्षत्र प्राप्त करता है ॥१०॥

त्रयस्त्रिंशं नवममहर्भवति । प्रतिष्ठा वै त्रयस्त्रिंशः प्रतिष्ठित्यै ॥११॥

नवम दिवस त्रयस्त्रिंश (३३ स्तोम का यज्ञ) होता है । त्रयस्त्रिंश प्रतिष्ठा प्रतिष्ठा हेतु है । ॥११॥

विश्वजित्सर्वपृष्ठोऽतिरात्रो दशममहर्भवति । सर्वं वै विश्वजित्सर्वपृष्ठोऽतिरात्र सर्वं, सर्वमेघः सर्वस्याप्स्यै सर्वस्यावरुद्ध्यै ॥१२॥

दशम दिवस विश्वजित् सर्वपृष्ठ अतिरात्र होता है । विश्वजित् सर्वपृष्ठ अतिरात्र सब कुछ है । सर्वं मेघ सबकी उपलब्धि हेतु सब कुछ है, ॥१२॥

अथातो दक्षिणानाम् । मध्यं प्रति राष्ट्रस्य यदन्यद् ब्राह्मणस्य वित्तात् स भूमि सपुरुषं प्राची दिग्घोतुर्दक्षिणा ब्राह्मणः प्रतीच्यध्वर्यो रुदीच्युद् गातु स्तदेव होतृकाऽ अन्वाभक्ताः ॥१३॥

अब दक्षिणा के विषय में कथन है कि राष्ट्र के बीच में ब्राह्मण के घन के अतिरिक्त जो कुछ भूमि अथवा पुरुष है, वह पूर्वं दिशा में होता, दक्षिण में ब्रह्मा, पश्चिम में अध्वर्यु, उत्तर में उदगाता, अन्य ऋत्विज उसी में भाग लेते हैं ॥१३॥

तेन हैतेन विश्वकर्मा भोवनऽईजे । तेनेष्ट्वाऽत्यतिष्ठत्सर्वाणि भूतानीदं सर्वमभवदतितिष्ठति सर्वाणि भूतानीदं सर्वं भवति यऽएवं विद्वान्त्सर्वं मेघेन यजते यो वै तदेव वेद ॥१४॥

विश्वकर्मा भोवन ने एक बार यह यज्ञ किया था । यह यज्ञ करके वह सब



प्राणियों में बढ़ गया और सब कुछ हो गया । जो इस तत्त्व को जानकर सर्वमेघ यज्ञ करता है या इसको जानता है वह सब प्राणियों में बढ़ता है और सब कुछ हो जाता है ॥१४॥

तँह कश्यपो याजयाञ्चकार । तदपि भूमिः श्लोकं जगौ न मा मर्त्यः कश्चन दातुमर्हति विश्वकर्मन्भौवन मन्दऽआसिथऽउप मङ्क्ष्यति स्या सलिलस्य मध्ये मृषैष ते संगरः कश्यपायेति ॥१५॥

वह यज्ञ कश्यप ने कराया । पृथिवी ने इस श्लोक का गान किया । हे विश्व कर्मा भौवन ! कोई भी मनुष्य मुझे दान में न दे । तू मूर्ख था । वह भूमि तो जल के बीच डूब जायेगी । कश्यप के साथ वह तेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ हुई ॥१५॥

ब्राह्मणम् ॥३॥ (७-१) इति सप्तमोऽध्यायः समाप्तः



## अध्याय ८

### ब्राह्मण १

#### पितृमेधा निरूपणम् (१)

अथास्मै कल्याणं कुर्वन्ति । अथास्मै श्मशानं कुर्वन्ति । गृहान्वा प्रज्ञानं वा यो वै कश्च न्रियते स शवस्तमाऽएतदन्नं करोति तस्माच्छवाश्र 'शवाश्र' ह वै तच्छ्मशानमित्याचक्षते परोक्ष 'श्मशाऽ' ह वै नाम पितृणामत्तारस्तेहामुस्मिल्लोकेऽ कृत श्मशानस्य साधु कृत्यामुप दम्भयन्ति तेभ्यऽएतदन्नं करोति तस्मा च्छ्मशान्न 'श्मशान्न' ह वै तच्छ्मशानमित्याचक्षते परोक्षम् ॥१॥

अब यजमान के हित के निमित्त कहते हैं । उसके निमित्त श्मशान बनाते हैं । घर के रूप में या स्मृति के रूप में । जो कोई मरता है उसे "शव" कहा जाता है तदर्थ अन्न बनाया जाता है । इसे ही "शवाश्र" कहा जाता है शवाश्र ही परोक्ष रूप में श्मशान है । "श्मशा" पितरों में खाने वालों को कहते हैं । वे पर लोक में उन मनुष्यों के पुण्यों को बिगाड़ देते हैं, जिसका अत्येष्टि (श्मशान कर्म) नहीं हुआ है, उनके लिये यह अन्न तैयार होता है, इसे ही श्मशान्न कहा जाता है, श्मशान्न ही परोक्ष रूप में श्मशान्न हो गया ॥१॥

तद्वै न क्षिप्रं कुर्यात् । नेत्रनमघं करवाणीति चिरऽ एव कुर्यादघमेव तत्तिरः करोति यत्र समा नानु चन स्मरेयुरश्रुति मेव तदघं गमयति यच्चनुस्मरेयुः ॥२॥



इसे शीघ्र न करे कि कहीं उसका पाप नया न हो जाय, विलम्ब में बनावे । जिससे पाप तिरोभूत हो जाय । जब लोग उसको स्मरण न करेंगे तब पाप सुना अ-सुना हो जायेगा यानी वह पाप चला जाता है जब कि उसका स्मरण न रहे यदि स्मरण रहे तो.....॥२॥

अयुङ्गेषु संवस्सरेषु कुर्यात् । अयुङ्गं हि पितृणामेक नक्षत्रऽ एक नक्षत्रं हि पितृणाममावास्यायाममावास्या वा ऽएक नक्षत्रमेको हि यद्वेता रात्रि सर्वाणि भूतानि संवसन्ति तेनो तं काममाप्नोति यः सर्वेषु नक्षत्रेषु ॥३॥

अयुङ्ग वर्षों में करे । अयुङ्ग वर्ष ही पितरों का है । एक नक्षत्र है । कुतोहि एक नक्षत्र पितरों का ही है । आमावास्या को क्योंकि आमावास्या ही एक नक्षत्र है । निश्चय ही यज्मान अकेला है इस रात को सब प्राणी रहते हैं अतः जो फल सब नक्षत्रों का होता है वह सब नक्षत्रों से मिल जाता है ॥३॥

शरदि कुर्यात् । स्वघा वै शरत्स्वधो वै पितृणामन्नं तदेनमन्ने स्यघायां दधाति माघे वा मा नोऽ धंभूदिति निदाघे वा नि नोऽधं घोयाताऽ इति ॥४॥

शरद् काल में करे । शरद ऋतु स्वघा है । पितरों का अन्न भी स्वघा है । इस प्रकार इसको अन्न में वा स्वघा में स्थापित करता है । अथवा माघ मास में स्थापित करता है । यह विचार कर किया "अथ" मेरे में पाप नहीं हैं अथवा निदाघ वा ग्रीष्म काल में । यह विचार कर नि + घा + अधः अर्थात् मेरे पाप दूर हो जाय ॥४॥

चतुः स्रक्ति । देवा असासुरश्चोभये प्राजापत्या दिक्ष्व स्पर्धन्त ते देवा असुरान्तसपत्नान्भ्रातृव्यान्दिग्भ्योऽ नु दन्त तेऽ दिक्काः परभवन्तस्माद्या दैव्यः प्रजाश्चतुस्रक्तीनि ताः श्मशानानि कुर्वन्तेऽथ याऽ आसुर्यः प्राच्यास्त्वद्ये त्वत्परिमण्डलानि तेऽनुदन्त ह्येनान्दिग्भ्यः उभे दिशावन्तरेण विदधाति प्राची च दक्षिणां चैतस्या ह दिशि पितृ लोकं स्पृष्ट्व द्वारं द्वारैर्वैनं पितृ लोकं प्रपादयति सूक्तिभिर्दिक्षु प्रतितिष्ठतीतरेणात्मनावान्तरदिक्षु तदेन सर्वासु दिक्षु प्रतिष्ठापयति ॥५॥

यह चार कोनों का हो । प्रजापति के पुत्र देव और असुर सब दिशाओं में युद्ध करते रहे । उन देवताओं ने अपने शत्रुओं को दिशाओं से पृथक् कर दिया । दिशाओं से वञ्चित होने पर वे सब पराजित हो गये । अतः जो देवताओं के लो-



( १०९ )

हैं वे श्मशान को 'चारों कोनों का बताते हैं जो असुर या पूर्वी आदि लोग हैं वे गोल गोल रचते हैं क्योंकि उनको देवताओं ने दिशाओं से निकाल दिया । पूर्व तथा दक्षिण के बीच में रखता हैं । इसी दिशा में पितृलोक का द्वार है इसी द्वार से पितृलोक में भेजता है । कोनों के द्वारा दिशाओं में स्थापित करता है, दूसरे शरीर से अन्य दिशाओं में । इस प्रकार इन सबको एवं दिशाओं में स्थापित करता है ॥५॥

अथातो भूमि जोषणस्य । उदीचीन प्रवणे करोत्युदीची वै मनुष्याणां दिक्तदेन मनुष्य लोकऽआभजत्येत द्व वै पितरो मनुष्य लोकऽआभक्ता भवन्ति यदेषां प्रजा भवति प्रजा हास्य श्रेयसी भवति ॥६॥

अब भूमि के अन्वेषण के विषय में कहते हैं । यह उत्तर दिशा की ओर झुकी हुई हो । मनुष्यों की दिशा उत्तर हैं । इस प्रकार मृतक को मनुष्यों का साक्षीदार बनाता है । पितर लोक मनुष्य लोक के भी एक अर्थ में साक्षीदार होते हैं अर्थात् इस लोक में इनकी सन्तानें होती हैं, ये सन्तानें श्रेयसकर वाली होंगी ॥६॥

दक्षिणा प्रवणे कुर्यादित्याहुः । दक्षिणा प्रवणे । वैपितृलोकस्तदेनं पितृलोकऽआभजतीति न तथा कुर्यादामीवद्ध नाम तच्छमशान करणं क्षिप्रैहैषामपरोऽनुप्राति ॥७॥

कुछ विद्वानों का कथन है-कि भूमि दक्षिण दिशा की ओर झुकी हुई है । क्योंकि पितृलोक दक्षिण दिशा की ओर झुका हुआ है । इस प्रकार उसको पितृलोक का साक्षीदार बनाता है, परन्तु ऐसा न करे । इससे उस श्मशान का मुख खुला हुआ रहेगा दूसरा उससे चला जायेगा । इस प्रकार घर का दूसरा पुरुष शीघ्र ही प्रेत हो जायेगा ॥७॥

दक्षिणा प्रवणस्य प्रत्यर्षे कुर्यादित्यु हैकऽआहुः । तत्प्रत्यु चिह्नतमघं भवतीति नोऽएव तथा कुर्याद्यद्वाऽउदीचीन प्रवणे करोति तदेव प्रत्यु-चिह्नतमघ भवति ॥८॥

कुछ विद्वानों का कथन दूसरी प्रकार से है । कि भूमि दक्षिण दिशा की ओर झुकी हुई है उस भूमि के 'प्रत्यर्ष' में बनावें अथवा जो भूमि दक्षिण दिशा की ओर झुकी हो उसमें ऐसा टुकड़ा काटे जो दक्षिण दिशा की ओर उठा हुआ हो, क्योंकि ऐसा श्मशान पाप को उठाने वाला अथवा दूर करने वाला होगा । परन्तु ऐसा न करे । क्योंकि वही श्मशान पाप को दूर करने वाला होता है, जो उत्तर दिशा की ओर नीचे झुका हुआ होता है ॥८॥

यस्यैव समस्य सतः । दक्षिणतः पुररस्तादापऽएत्य स स्थाया प्रान्त्यऽएतां दिशमभिनिष्पद्या द्याक्षय्याऽआपोऽपिपद्येऽरस्तत् कुर्यादन्नं



वाऽ आपोऽन्नाद्यभेवास्माऽएतत्पुरस्तात् प्रत्यग्दधात्यमृतमु वाऽ आप ए  
ह जीवानां दिगन्तरेण सप्तर्षीणां चोदयनमादित्यस्य चास्तमयनम मृत  
तज्जीवेषु दधाति तद्वैतत्प्रति मीवन्नाम श्मशान करणं जीवेषु  
हितं यद्वाव जीवेभ्यो हितं तत्पितृभ्यः ॥९॥

श्मशान ऐसे स्थान पर निर्माण करे जो समतल भूमि हो । जहाँ दक्षिण  
पूर्व से जल आकर ठहरे और उत्तर पश्चिमी दिशा में जाकर बिना प्रेरणा के बह  
जल अर्थात् झील आदि में मिल जायें । जल ही अन्न है वह उसको सामने से  
की ओर अन्न अपित करता है । जल ही अमृत है सप्त ऋषियों के उदय और  
के अस्त होने के बीच का स्थान जीवों की दिशा है । इस प्रकार जीवित लोगों  
अमृत स्थापित करता है । यह जीवों के हित के लिए बन्द श्मशान है और जो जीवों  
का हितकर है और वह पितरों का भी ॥९॥

कम्बति कुर्यात् । कं मेऽसदित्यथो शम्बति शं मेऽसदिति नाधि  
कुर्यान्नाकाशे नेदाविरधं करवाणीति ॥१०॥

सुखकर हो, क्योंकि उसे सुख दे सके । जिससे शान्तिमय हो, उन्हा  
शान्ति हो । मार्ग में न हो, आकाश में न हो, खुले स्थान में कि कहीं पाप प्रकट  
हो जाय ॥१०॥

गुहा सदवतापि स्यात् । तद्यद्गुहा भवत्यधमेव तद्गुहा करोति  
यदवता प्यसौ वाऽआदित्यः पाप्मनोऽपहन्ता सऽएवास्मात् पाप्माक  
पहन्त्यथोऽआदित्य ज्योतिषमेवैनं करोति ॥११॥

गुहा में हो परन्तु धूप ऊपर से प्रविष्ट करती हो । गुहा में इसलिए  
गया है कि पाप छिप जाय । क्योंकि धूप को इसलिये कहा कि धूप पाप को  
वाली है, वह इससे पाप को दूर कर देता है अथवा यों कहिये कि इसको  
प्रकाश से संयुक्त करता है ॥११॥

न तस्मिन् कुर्यात् । यस्येत्थादनूकाशः स्याद्वाचमानं ह  
तत्क्षिप्रैर्हैषामपरोऽनु प्रैति ॥१२॥

ऐसे स्थान पर न करे । यहाँ से ग्राम दिखाई पड़ता हो । क्योंकि ऐसा  
का तात्पर्य हुआ संकेत से बुलाना । इसी प्रकार दूसरा भी करने लग जायेगा ॥१२॥

चित्रं पश्चात् स्यात् । प्रजा वै चित्रं हास्य प्रजा भवति यदि चि  
न स्यादापः पश्चाद्वोत्तरतो वा स्युरापो ह्येव चित्रं चित्रं हैवास्य  
भवति ॥१३॥



( १११ )

पीछे की ओर चित्र विचित्र (सुन्दर) वस्तु हों। चित्र का अर्थ है प्रजा या सन्तान। अर्थात् उसकी सन्तान (प्रजा) सुन्दर होगी। यदि सुन्दर वस्तु न हो तो पश्चिम या उत्तर दिशा की ओर जल हो। जल ही सुन्दर है। इस कारण भी उसकी सन्तान सुन्दर होगी ॥१३॥

ऊषरे करोति । रेतो वाऽऊषाः प्रजननं तदेनं प्रजननऽ आभजत्येतद्ध वै पितरः प्रजननऽ आ भक्ता भवन्ति यदेषां प्रजा भवति प्रजा हास्य श्रेयसी भवति ॥१४॥

ऊषर ही भूमि हो। ऊषा का अर्थ रेत. (वायं)। इस प्रकार प्रजनन का प्रजनन में साक्षी बनाता है तथा इस प्रकार पितर उसके प्रजनन में साक्षीदार हो जाते हैं और उनकी सन्तान हो। इस प्रकार उनकी सन्तान श्रेयस्कर होती है ॥१४॥

समूले । समूलं हि पितृणां वीरिणः मिश्रऽ एतद्धास्याः पित्र्यमनति रिक्तमथोऽ अघमेव तद्वद्ध करोति ॥१५॥

मूल वाली भूमि में। चूँकि मूल वाली भूमि पितृ लोगों की हुआ करती है। वे जड़े वीरि नामी झाड़ी या दूसरी प्रकार की घास की हो। इससे इसमें पितृ लोगों का अधिक भाग न हो, इस प्रकार मृतक के पाप को बांध देता है ॥१५॥

न भूमि पाशमभिविदध्यात् । न शरं नाश्मगन्धां नाध्याण्डां न पृश्नि पर्णी नाश्वत्थस्यान्तिकं कुर्यान्न विभीतकस्य न तिल्वकस्य न स्फूर्जकस्य न हरिद्रोर्न न्यग्रोधस्य ये चान्ये पापनामानो मङ्गलोपेप्सया नाम्ना मेव परिहाराय ॥१६॥

निम्न लिखित वृक्षों या झाड़ियों की भूमि के समीप में न बनावें भूमिनाश, शर, अश्मगन्ध, अध्याण्ड, पृश्निपर्णी, अश्वत्थ, विभीतक, तिल्वक, स्फूर्जक, हरिद्र, न्यग्रोध, अथवा अन्य कोई इसी प्रकार के वृक्ष। मङ्गल नामों से प्रथक करने के लिये, अथवा मङ्गल नामक वृक्ष हों ॥१६॥

अथातऽ आवृदेव । अग्नि विधयाऽग्नि चितः श्मशान करोति यद्वै यजमानोऽग्निं चिनुते ऽमुष्मै तल्लोकाय यज्ञेनात्मानं संस्कुस्त एतदु ह यज्ञिय कर्मासं स्थितमा श्मशान करणात्तद्यदग्नि विधयाग्निचितः

श्मशानं करोत्यग्निचित्यामेव तत्सं स्थापयति ॥१७॥  
उसका क्रम निम्न प्रकार से है—अग्निचित् पुरुष का श्मशान वेदी के आकार का हो। क्योंकि जब यजमान वेदी का निर्माण करता है तो परलोक के लिये नया शरीर बनाता है। यज्ञिय कर्म उस समय तक पूर्ण नहीं होता ताबत श्मशान न बन जाये।



( ११२ )

अग्निचित् का श्मशान वेदी की आकृति का बनाता है तथा इससे अग्निचित् का पूर्ण करता है ॥१७॥

तद्वै न महत्कुर्यात् । नेन्महदघं करवाणीति यावानपक्ष पुच्छोऽग्निं स्तावत्कुर्यादित्यु हैकऽआहुः समानो ह्यस्यैषऽ आत्मा यथैवाग्ने स्तथेति ॥१८॥

अग्निचित् बहुत बड़ा न बनाये कि कहीं पाप बड़ा न हो जाय । कुछ छोटा का कहना है कि इतना बड़ा हो जितनी बड़ी वेदी का निर्माण हुआ हो । पक्ष को पूंछ को छोड़कर । चूंकि मृत मनुष्य का शरीर भी वेदी की आकृति होता है ॥१८॥

पुरुष मात्रं त्वेव कुर्यात् । तथाऽपरस्माऽ अवकाशं न करोति पश्चाद्वरीयः प्रजा वै पश्चात् प्रजामेव तद्वरीयसीं कुरुतेऽ उत्तरतो वर्षीयः प्रजा वाऽउत्तरा प्रजामेव तद्वर्षीयसीं कुरुते तद्विधायापसलवि सृष्ट्यापि स्पन्द्याभिः पर्यातनोत्यपसल वि पित्र्यं हि कर्म ॥१९॥

वेदी शरीर के बराबर निर्माण करे । दूसरों के निमित्त अवकाश नहीं छोड़ता पीछे चौड़ा । जो पीछे छूट जाता है वही प्रजा होती है । इस प्रकार सन्तान बरीय या चौड़ी चकली उत्कृष्ट बनाता है । उत्तर की ओर चौड़ी चकली, क्योंकि सन्तान भी उत्तर पीछे आने वाली है । इस प्रकार सन्तान को श्रेष्ठ बनाता है ऐसा करके वह उस बटी हुई रस्सियों से बाँधता है । यह रस्सी दाँई ओर से बाँधी और के बटी जाती है । पितृ कर्म सूर्य की गति से विरुद्ध होता है ॥१९॥

अथोद्धन्त वाऽ आहु । स यावत्येव निवप्स्यन्त्स्यात्ता बहुदन्त त्पुरुष मात्रं त्वेवोद्धन्यात्तथाऽ परस्माऽ अवकाशं न करोत्यथो औषधि लोको वै पितरऽ ओषधीनां ह मूलान्युपसर्पन्त्यथो नेदस् अन्तर्हितोऽ सदिति ॥२०॥

इसके पश्चात् उस भूमि को खुदवाता है । जितना ऊँचा बनाना हो उतना ही बनावे । परन्तु अच्छा तो यह होता कि मनुष्य की लम्बाई के बराबर ही इससे दूसरे के लिए अवकाश नहीं छोड़ता है । एक तो औषधि ही लोक के बरत है । वे औषधियों के मूलों में छिपते हैं । दूसरे ऐसा न हो कि वह इस भूमि से प्रकट हो जाय या अन्तर्हित हो जाय ॥२०॥ ब्राह्मणम् ॥ (८-१)





( ११३ )

अव्याय ८

## ब्राह्मण २

## पितृमेध—निरूपणम् (२)

अतर्धायो है के नि वपन्ति । देवाश्चासुराश्चोभये प्राजापत्या अस्मिंल्लोके ऽस्पर्धन्त ते देवाऽअसुरान्तसपत्नान् भ्रातृव्यानस्माल्लोकाद-  
नुदन्त तस्माद्या दैव्यः प्रजा अन्तर्नहि तानि ताः श्मशानानि कुर्वन्तेऽथ  
याऽ आसुर्यः प्राच्या स्त्वद्ये त्वदन्तर्हितानि ते चम्वां त्वद्यस्मिस्त्वत् ॥१॥

कुछ लोग श्मशान के चारो ओर बांध देते हैं । प्रजापति की सन्तान देव और असुर इस संसार में आधिपत्य प्राप्त करने के लिये युद्ध करने लगे । देवताओं ने अपने शत्रु दुष्ट असुरों को इस संसार से निकाल दिया । अतः जो सन्तान दैव्य या देवों के मत्त हैं वे अपने अपने श्मशानों की पृथिवी से संयुक्त कर बनाते हैं और जो असुर या पूर्वी मादि लोग हैं वे पृथिवी से दूर किसी चम् आदि के किनारे बसे ॥१॥

अथैनत्परिश्रिद्भिः परिश्रयत्ति । याऽ एवामूः परिश्रित स्ताऽएता यजुषा ताः परिश्रयति तूष्णीमिमा दैव च व तत्पित्र्यं च व्याकरोत्य परि-  
मिताभिरपरमितो ह्यसौ लोकः ॥२॥

इसके चारो ओर पत्थरों की परिधि कहिये या परिश्रित का निर्माण करता है । जैसे वेदी के परिश्रित होते हैं वैसे ही यहाँ पर निर्माण करना चाहिये । तथा यजुर्वेद के मंत्रों का उच्चारण करके उनका निर्माण करता है अथवा मोन होकर । इस प्रकार से देवताओं के कार्य और पितृ के कार्यों में बिना गणना किये हुये भेद उत्पन्न कर देता है क्योंकि परलोक अपरिमित है ॥२॥

अथैनत्पलाश शाखया व्युद्धति । यदेवादौ व्युद्धन् तदेतदपेतो यन्तु पथायोऽसुम्ना देव पीयव ऽइति पणीनेवैतदसुम्नान्दिव पीयू न सुर रक्षसान्यस्माल्लोका दपहन्त्यस्य लोकः सुतावतऽइति सुतवान्हि य ऽईजानो द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तमितितदेनमृतुभिश्चाहोरात्रैश्च स लोकं करोति ॥३॥

इसमें पलाश की शाखा से स्वच्छ करता है । गार्हपत्य अग्नि में जैसे झाड़ू दी जाती है वैसे ही यहाँ पर भी झाड़ू यजुः के निम्न मंत्रों से दिया जाता है :—

अपेतनो यन्तु पणयोऽसुम्ना देव पीयवः ।

“अस्य लोकः सुतावतः

द्युभिरक्तुभिरक्तुभिर्व्यक्तम्—



( ११४ )

यमो देवात्वं वसानमस्मै ॥३५/१

देवों की हिंसा करने वाले, दुःखदायी पणि या असुर जो हैं यहाँ से दूर हो जाय । अर्थात् इन दुष्ट असुरों को इस लोक से निकालता है ।

यह लोक सोम यज्ञ करने वालों का है । जो सुतवान है वही इस यज्ञ को करे ।

इस प्रकार हमको ऋतुओं, दिनों और रातों का सलोक बनाता है ॥३॥

“यम उस्ते स्थान देवे” ।

यमो ददात्ववसानमस्माऽ इति यमो ह वा ऽ अस्यामवसानस्येष्टे तमेवास्माऽ अस्यावसानं याचति तां दक्षिणोदस्यत्युदगितरां देवं चैव तत्पित्र्यं च व्याकरोति ॥४॥

क्योंकि इस भूमि पर स्थानों का ईश यम है । इस मृतक के स्थान के लिये भी उसी से याचना करता है । झाड़ू की शाखा में से एक को दक्षिण दिशा में फेंक देता है और दूसरी को उत्तर दिशा में । इस प्रकार देव कर्म और पितृकर्म में प्रयत्न कर देता है ॥४॥

अथ दक्षिणतः सीरं युनक्ति । उत्तरतऽइत्यु हैकऽ आहुः स यथा कास्येत तथा कुर्याद्युङ्क्तेति सम्प्रेष्याभि मंत्रयते सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु इति सवितैवास्यैतच्छरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छति तस्मै युज्यन्तामुन्नियाऽ इत्येतस्माऽउ हि कर्मणऽ उन्निया युज्यन्ते ॥५॥

अपेतो यस्तु परागोऽ सुम्ना देव पीयवः अस्य लोकः सुतावतः । छुमिरहोति रत्तुमिर्भ्यक्तम् यमो ददात्व वसानमस्मै ॥३५/१

देवों की हिंसा करने वाले दुःखदायी पणि या असुर जो हैं वहाँ से दूर हो जाय । अर्थात् इस दुष्ट असुरों को इस लोक से निकालता है यह लोक सोम यज्ञ करने वालों का है । जो सुतवान है । वही इस यज्ञ को करे । इस प्रकार हमको ऋतुओं, दिनों और रातों का सलोक बनाता है, यम उसे स्थान देवे ।

अब अर्धवर्ग दक्षिण दिशा की ओर हल जोतता है, कुछ लोगों का तात्पर्य यह है कि उत्तर की ओर । अथवा जैसी इच्छा हो वैसा ही करे । “जीत” शब्द आदेश देकर इस मंत्र को पढ़ता है—

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु । तस्मै युज्यन्तामुन्नियाः ॥३५/१

तेरे शरीरों के लिये सविता पृथिवी में स्थान की इच्छा करे सविता अबत ही पृथिवी में इस मृतक शरीर के लिए इच्छा करता है । “उन्निया” अर्थात् ६: ०० के लिये ही जोते जाते हैं ॥५॥



( ११५ )

षड्गवं भवति । षडृतवः संवत्सरऽ ऋतुष्वेवैनमेतत्संवत्सरे प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठापति तदपसलवि पर्याहृत्योत्तरतः प्रतीचीं प्रथमां, सीतां कृषति वायुः पुनात्विति सविता पुनात्विति जघनार्धेन दक्षिणाऽग्नेर्भ्राज सेति दक्षिणार्धेन प्राचीं, सूर्यस्य वर्चसेत्यग्नेर्नोदीचीम् ॥६॥

छ बैल होते हैं अर्थात् संवत्सर में छः ऋतुये हुआ करती हैं । इस प्रकार इसको ऋतुओं में अथवा संवत्सर में प्रतिष्ठित करता है ॥ अपसलवि अर्थात् सूर्य की गति के विरुद्ध दिशा में दाहिनी ओर से बाईं ओर मुड़कर प्रथम कुण्ड का निर्माण करता है वह निम्न मंत्र से -

वायुः पुनातु, सविता पुनातु, अग्ने भ्राजसा, सूर्यस्य वर्चासा, ३५/३  
इस मंत्र से पश्चिम में दक्षिण की ओर से, दक्षिण में पूर्व की ओर से, आगे उत्तर की ओर से कुण्ड का निर्माण करना चाहिये ॥६॥

चतस्रः सीता यजुषा कृषति । तद्यच्चतसृषु दिक्ष्वन्नं तस्मिन्ने वैनमेतत्प्रतिष्ठापयति तद्वै यजुषा ऽ द्वा वै तद्यद्यजुरद्वौ तद्यदिमा दिशः ॥७॥

यजु से ४ कुण्ड बनाता है । इस प्रकार ४ दिशाओं में जो अन्न है उसमें इसको प्रतिष्ठित करता है । यजुः से ही क्यों ? यजु निश्चित है क्योंकि ये निशायें भी निश्चित ही हैं ॥७॥

अथात्मानं विकृषति । तद्यदेव संवत्सरे ऽन्नं तस्मिन्ने वैनमेतत्प्रतिष्ठापयति तूष्णीमपरिमिताभिरपमितो ह्यसौ लोकः ॥८॥

अब इसके पश्चात् श्मशान के मध्य में होकर जोता है । इस प्रकार जो अन्न संवत्सर में है उसमें उसको चुप के से प्रतिष्ठित करता है कुण्ड अपरिमित होते हैं क्योंकि परलोक अपरिमित है ॥८॥

अथैनद्विमुञ्चति । कृत्वा तत्कर्म यस्मै कर्मण ऽएनद्युक्ते विमुच्यन्तामु-  
स्रिया ऽइत्येतस्मा ऽउ हि कर्मणऽउस्रिया युज्यन्ते तद् दक्षिणोदस्यत्युद-  
गितरक्षैव चैव तत्पित्र्यं च व्या करोति ॥९॥

जिस कर्म को करने के लिये बैलों को हल में जोता जाता है या उसके समाप्त होने पर उन बैलों को यह कहते हुए खोलता है कि 'विमुच्यन्ता मुस्रिया' ३५/३ चूँकि इसी काम के लिए तो बैलों को जोता गया था तथा बैलों को दक्षिण दिशा की ओर खोलता है । अन्य अवस्थाओं में उत्तर दिशा की ओर इस प्रकार देव तथा पितृकर्म भेद करता है ॥ ९ ॥ ब्राह्मणम् । (८-२)





( ११६ )

## ब्राह्मण ३

## पितृमेघ निरूपणम् (३)

अथ सर्वोषधं वपति । यदेवादः सर्वोषधं तदेतद्बह्वीभिस्त द्वपत्येकयेदं  
दैवं चैव तत्पित्र्यं च व्याकरोत्यश्वत्ये वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृतेति  
ज्योग्जीवातुमैवेभ्यऽएताशास्ते तथो हैषामेकैकोऽपरो जरसाऽनुप्रैति ॥१॥

अब सब औषधियों को बोता है । जो अन्यत्र फल है वह फल यहां भी है  
अन्यत्र बहुत मन्त्रों से बोया था, यहाँ पर एक मन्त्र से, इस प्रकार देव तथा पितृकां  
का भेद करता है, वह मन्त्र यह है—

अश्वत्ये वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।

गोभाजऽत्किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ।

३५/४

“अश्वत्य में तुम्हारा घर है, पर्ण में तुम्हारी वसति है” यजमान के परिवार  
की दीर्घायु: होने के लिए प्रार्थना करता है, अब इनमें से हर एक बड़ी आयु में  
मरता है ॥१॥

अथैनन्निवपति । इयं वै पृथिवी प्रतिष्ठाऽस्यामेवैनमेतत्प्रतिष्ठायां  
प्रतिष्ठापयति पुराऽऽदित्यस्योदयात्तिर—ऽइव वैपितरस्तिरऽइव रात्रिस्तिर  
ऽएव तत्करोति यथा कुर्वतोऽभ्युदियात्तदेनमुभयोरहो रात्रयोः प्रतिष्ठा-  
पयति ॥२॥

अब इसके अनन्तर इन अस्थियों को अग्नि में डालता है, वह पृथिवी प्रतिष्ठा  
है । उसको इसी प्रतिष्ठा में सूर्योदय से पहिले प्रतिष्ठित करता है, चूँकि पितर लोक  
छिपे हुये हैं रात्रि भी छिपी हुई होती है छिपा हुआ यह यह काम करता है वह इस  
प्रकार कि सूर्य उसको करते हुये उस पर अपना प्रकाश करे । इस प्रकार वह उसको  
रात और दिन दोनों में प्रतिष्ठित करता है ॥२॥

सविता ते शरीराणि । मातु रूपस्थ ऽ आवपन्विति सविते वासं  
तच्छरीराण्यस्यै पृथिव्यै मातुरुपस्थ ऽ आवपति तस्मै पृथिवि शं भवेति  
यथैवास्माऽइयं शं स्यादेवमेतदाहप्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके  
लोके निदधाम्यसाविति नाम गृह्णात्यं वै लोक उपोदकस्तदेनं प्रजापतौ  
देवतायामुपोदके लोके निदधाति ॥३॥

अब सविता उसकी अस्थियों को पृथिवी माता की कोख में बोता है  
इसलिए कि पृथ्वी उसके लिये हितकर हो । वह मृत पुरुष का नाम लेकर कहता है



( ११७ )

है कि तुझे प्रजापति देवता में जल के समीप स्थापित करता हूँ । क्योंकि पृथिवी जल के समीप है । इस प्रकार वह उसको जल के समीप प्रजापति देवता में स्थापित करता है ॥३॥

अथ कश्चिदाह । एता दिशमनवानन्तसृत्वा कुम्भं प्रक्षीयान पेषमाण ऽएहीति तत्र जपति परं मृत्योऽनुपरेहि पन्थां यस्ते ऽ अन्य ऽ इतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजा रीरिषो मोत वीरानिति ज्योग्जीवातुमेवैभ्य ऽ एत दाशास्ते तथो हैषामेकैकोऽपरो जरसाऽनुप्रैति ॥४॥

अब इसके पश्चात् किसी से कहता है कि इस दक्षिण दिशा में बिना मुड़े हुए जाकर घड़े को फेंक आओ और बिना पीछे मुड़े हुये लौटकर आ जा । इस सम्बन्ध में निम्न मन्त्र को जपता है—

परं मृत्यो ऽ अनुपरेहि पन्थां यस्ते ऽ अन्य ऽ इतरो देव यानात् ।

चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजा रीरिषो मोत वीरान् ॥३५-७॥

हे मृत्यु ! तू उस मार्ग से जा जो मार्ग देव मार्ग से भिन्न है आँख वाले और कान वाले तुझसे कहता हूँ कि तू हमारी सन्तानों तथा वीरों को मत दुःख दे !

अथैनं यथाङ्गं कल्पयति । शं वातः शं हि ते घृणिः शं ते भवन्तिवष्टकाः शन्ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाऽभि शूशुचन् । कल्पन्तां ते दिश स्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्य भवन्तु सिन्धवः । अन्तरिक्षं शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाऽइत्येतदेवास्मै सर्वं कल्पयत्येतदस्मै शिवं करोति ॥५॥

अब इस मन्त्र की प्रत्येक अङ्ग से कल्पना करता है :— ३५/८ - ९ “शं वातः शं हि ते घृणिः शं ते भवन्तिवष्टकाः” से “ते दिश सर्वाः” तक । वायु कल्याण कारक हों, धूप, ईंटें, अग्नियाँ, पृथिवी की प्रत्येक वस्तु तुझे न जलावे अपितु कल्याण करने वाली हों, दिशा-उपदिशायें तेरे अनुकूलकारी हों, अन्तरिक्ष कल्याणकारी हों—अर्थात् सब दिशायें कल्याणकारी हों । उसके लिए इन सबको अनुकूल बनाता है । उन सबको कल्याणकारी बनाता है ॥५॥

अथ त्रयोदश पामाश्र्य ऽ इष्टका ऽ अलक्षणाः कृता भवन्ति । याऽ एवाम्रगनाविष्टकास्ताऽएता यजुषा ताऽउपदधाति तूष्णीमिमा दैव चैव तत्पित्र्यं च व्याकरोति ॥६॥

अब १३ फुट भर की ईंटे बिना रेखाओं की बनाई जाती है । वे वेदी की



( ११८ )

ईंटों के समान होती हैं । उनको यजुर्वेद के मंत्रों को चुपके से पढ़ कर रखते हैं । इस प्रकार देवकर्म और पितृकर्म में भेद होता है ॥६॥

त्रयोदश भवन्ति । त्रयोदश मासाः संवत्सरऽऋतुष्वेवैनमेतत्संवत्सरो प्रतिष्ठयां प्रतिष्ठापयति ॥७॥

१३ होती हैं । वर्ष में १३ महीने होते हैं । इस प्रकार वह उसको ऋतुओं और संवत्सर में प्रतिष्ठित करता है ॥७॥

पाद मात्र्यो भवन्ति । प्रतिष्ठा वै पादः प्रतिष्ठा मेवास्मै करोत लक्षणा भवन्ति तिर-ऽइव वै पितरस्तिर-इव तद्यदलक्षणं तिर-ऽएवतत्तिरः करोति ॥८॥

वे फुट भर की होती है । पाद प्रतिष्ठा हैं । इस प्रकार उसके लिए प्रतिष्ठा करता है । उन पर लक्षण या रेखायें नहीं हुआ करतीं, क्योंकि पितर लोग छिपे हुए हैं, जो अलक्षण होता है वही तिरोभूत हो सकता है । इस प्रकार जो तिरोभूत है उसको तिरोभूत करता है ॥८॥

तासां मेकां मध्ये प्राचीमुपदधाति । सऽआत्मा तिस्रः पुर-स्तान्मूर्धसः, हितास्तच्छिरस्तिस्त्रो दक्षिणतः स दक्षिणः पक्षस्तिस्त्रो उत्तरतः सऽउत्तरः पक्षस्तिस्त्रः पश्चात्तत्पुच्छं, सोऽस्यैष पक्ष पुच्छवानात्मा यथैवाग्नेस्तथा ॥९॥

उनमें से एक को मध्य में सामने का पहलू पूर्व की ओर करके रखता है, वह आत्मा है । तीन आगे की सिर के स्थान में । तीन ओर दाईं ओर बांये पक्ष के स्थान में । तीन बाईं ओर बांये पक्ष के स्थान में ; तीन पीछे पूँछ के स्थान में । इस प्रकार यह उसका पक्ष और पूँछ सहित शरीर बन गया । यह बिल्कुल वेदी सदृश है ॥९॥

अथ प्रदरात्पुरीषमाहर्तवाऽआह । एतद्वास्याः पित्र्यमनतिरिक्तमथोऽअघमेव तद्वद्ध करोत्यस्मिन्नु हैकेऽवान्तर देशे कर्षू खात्वा ततोऽस्याहारं कुर्वन्ति परि कृषन्त्यु हैके दक्षिणतः पश्चादुत्तरतस्ततोऽस्याहारं कुर्वन्ति स यथा कामयेत तथा कुर्यात् ॥१०॥

अब किसी खांह में से मिट्टी मंगाता है । इस प्रकार पितरों का पृथिवी के अधिक भाग नहीं होने देता और न उसके पाप को बढ़ने देता है । कोई २ कोई तो अवान्तर देश में खोदकर वहाँ से लाते हैं । कुछ दक्षिण-पश्चिम में । फिर उत्तर दिशा की ओर ले जाते हैं । जैसी इच्छा हो वैसा करे ॥१०॥



, तद्वै न महत्कुर्यात् । नेत्सहदघं करवाणीति यावानुद्बाहुः पुरुषस्ता-  
वत्क्षत्रियस्य कुर्यान्मुखदघ्नं ब्राह्मणस्योपस्थदघ्नं स्त्रियाऽअरुदघ्नं  
वैश्यस्याष्ठीवदघ्नं शूद्रस्यैवं वीर्या ह्येतदिति ॥११॥

उसे बड़ी न बनावे । कहीं मृतक का पाप न बढ़ जाय । क्षत्रिय का इतना  
बड़ा जितना मनुष्य की भुजायें ऊपर को बढ़ाकर होता है । ब्राह्मण का मुँह तक  
स्त्री का कमर तक, वैश्य का जांघ तक, शूद्र का घुटने तक । क्योंकि इनका पराक्रम  
इतना ही है ॥११॥

अघोजानोत्वेव कुर्यात् । तथाऽपरस्माऽअवकाशं न करोति तस्य  
क्रियमाणस्य तेजनीमुत्तरतो धारयन्ति प्रजा ह सा प्रजामेव तदुत्तरतो  
धारयन्ति तां न न्यस्येद्धृत्वा वैनामृद्वा वा गृहेषूच्छयेत्प्रजामेव तद्गृहेषू-  
च्छ्रयति ॥१२॥

जानु के नीचे तक बनाये । इस प्रकार दूसरे के लिए स्थान नहीं छोड़ता ।  
जब वह स्मशान बनाया जा रहा हो उसके उत्तर की ओर एक घास का बण्डल  
उठाते हैं । यह प्रजा है । इस प्रकार मृतक की सन्तान को ऊपर उठाते हैं । उसको  
लाकर या उठाकर फेंक न दें, परन्तु घर में ही रखे, इस प्रकार गृह में प्रजा को  
रखता है ॥१२॥

कृत्वा यवान्वपति । अघं मे यवयानित्यवकाभिः प्रच्छादयति कं  
मेऽसदिति दर्भैः प्रच्छादयत्यरुक्षतायै ॥१३॥

इसका निर्माण करके जौ का वपन करता है । जिससे मेरे पाप को 'यवय'  
दूर करे । "अवका" वृक्ष से ढकता है कि मेरे लिये "कम्" सुख हो । दर्भघास से  
ढकता है कि रूखापन न होने पावे ॥१३॥

ब्राह्मणम् ॥ (८-३)



## ब्राह्मण ४

## पितृमेघ निरूपणम् (४)

अथैनच्छङ्कुभिः परिणि हन्ति । पालाशं पुरस्ताद् ब्रह्म वै पलाशं  
ब्रह्मपुरोगवमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयति शमीमयमुत्तरतः शंभोऽसदिति  
वारणं पश्चादधं मे वारयाताऽइति वृत्र शङ्कुं दक्षिणतोऽघस्यैवान-  
त्ययाय ॥१॥

इसके पश्चात् सामने पलाश की शंकु (खूंटी) गाड़ते हैं, पलाश ब्रह्म है।  
इस प्रकार ब्रह्म को अगुआ बनाकर उसको स्वर्ग को भेजता है। उत्तर की ओर  
शमी, कि मुझे “शं” या शान्ति हो। पीछे वरण की कि उसका पाप दूर हो जाय।  
दाई ओर वृत्र वृक्ष की जिससे पाप आगे न बढ़ने न पाये ॥१॥

अथ दक्षिणतः परिवक्त्रे खनन्ति । ते क्षीरेण चोदकेन च पूरयन्ति  
ते हैनममुष्मिल्लोकेऽक्षिते कुल्येऽउपधावतः सप्तोत्तरतस्ताउदकेन पूरयन्ति  
न ह वै सप्त स्रवन्तीरघमत्येतुमर्हत्यघस्यैवानत्ययाय ॥२॥

इसके पश्चात् दाहिनी ओर दो टेढ़ा खाइयाँ खोदते हैं, और उसमें दूध तथा  
जल से पूरा करते हैं। ये दो अक्षय कुलियाँ हैं जो उस लोक में बहती हैं। बाँई  
ओर सात खोदते हैं तथा उसे जल से पूरा करते हैं कि पाप आगे बढ़ोत्तरी न कर  
सके। क्योंकि पाप सात नदियों से पार नहीं जाता ॥२॥

अश्मनस्त्रींस्त्रीन्प्रकिरन्ति । ताऽअभ्युत्तरन्त्यश्मन्वती रीयते स  
रभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरत सखायः । अत्रा जहीमोऽशिवायेऽअसञ्छिवान्व-  
मुत्तरेमाभि वाजानिति यथैव यजुः स्तथा बन्धुः ॥३॥

इन खाइयों में तीन तीन डालते हैं तथा उनको तरते हैं। वह निम्न मन्त्र से  
अश्मन्वती रीयते स, रभध्व मुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।

अत्रा जहीमोऽशिवा ये ऽ असञ्छिवान् वय मुत्तरेमाभि वाजान् ॥यजु० ३५॥  
हे मित्रों ! पत्थर वाला तैर रहा है। संमले रहो। उठो, तर जाओ  
अकल्याणकारी आत्माओं को हम यहाँ पीछे छोड़ते हैं तथा कल्याणकारी अत्माओं को  
तैर कर जाते हैं ॥३॥

अपामार्गेरपमृजते । अघमेव तदपमृजतेऽपाघमप किल्बिषमप  
कृत्यामपो रपः । अपामार्गं त्वमस्मदप दुःष्वप्य सुवेति यथैव यजुस्तथा  
बन्धु ॥४॥

अपामार्ग वृक्ष से अपने को शुद्ध करते हैं। इससे वे पाप छूटते हैं। (उप-  
मर्ज) निम्न मन्त्र यह है—

अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपोरपः ।

अपामार्गं त्वमस्मदप दुःष्वप्य सुव ॥यजु० ३५॥११



यत्रोदकं भवति तत्स्नान्ति । सुमित्रियानऽआपऽओषधयः सन्त्वित्य-  
ञ्जलिना ऽपऽउपाचति वज्रो वाऽआपो वज्रेणैवैतन्मित्रघेयं कुरुते-  
दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मऽइति यामस्य दिशं  
द्वेष्यः स्यात्तां दिशं परा सिञ्चेत्तौ नैव तं परा भावयति ॥५॥

“हे अपामार्ग ! तू पाप, दोष, बुरे कर्म, दुर्बलता तथा बुरे स्वप्न को हमसे  
दूर कर ॥४॥

जहाँ पर जल होता है वहीं पर स्नान करते हैं ।

सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु, दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि  
यं च वयं द्विष्मः ॥१२॥ यजु० ३५/१२

जल और औषधि हमारे मित्र हों, तथा उनके लिये शत्रु हों, जिनसे हम द्वेष  
करते हैं, या जो हमसे द्वेष करते हैं । अञ्जलि में जल भरता है । जल वज्र होता है ।  
इस प्रकार वज्र से मित्रता करता है ।

जिस दिशा में उसका शत्रु रहता है उस दिशा में उसको फेंकता है और इस  
प्रकार उसको पराजित करता है ॥५॥

स यदि स्थावराऽआपो भवन्ति । स्थापयन्त्येषां पाप्मानमथ यदि  
वहन्ति वहन्त्येवैषां पाप्मानं स्नात्वाऽहतानिवासांसि परिधायानडुहः  
पुच्छमन्वारभ्यायन्त्याग्नेयो वाऽअनड्वानग्निमुखाऽएव तत्पितृलोकाञ्जीव  
लोकमभ्यायन्त्यथोऽग्निर्वै पथोऽतिवोढा सऽएनानति वहति ॥६॥

यदि वह जल ठहरा हुआ हो तो पापों को ठहरा देगा और यदि बहता हुआ  
हो तो बहा देगा । स्नान करके बिना धुले हुये वस्त्रों को पहन कर बैल की पूँछ पकड़  
कर घर को आते हैं उस स्वरूप बैल अग्नि का है । इस प्रकार वह अग्निमुख होकर  
के पितृलोक से जीव लोक में ले आते हैं । अग्नि ही मार्ग का नेता या पथ प्रदर्शक  
है । अतः अग्नि ही इनको ले आते हैं । वह मंत्र निम्न है :—

अनड्वाहमन्वारमामहे सौरभेयं स्वस्तये ।

स नऽइन्द्रऽइव देवेभ्यो बह्विः सन्तारणो भव ॥३०॥१२

जिसका कि जाप करें ।

उद्वयं तमसस्परीति । एतामृचं जयन्तो यन्ति तत्तमसः पितृ लोका  
दादित्यं ज्योतिरभ्या यन्ति तेयऽआगतेभ्यऽआञ्जनाभ्यञ्जने प्रयच्छन्त्येष  
ह मानुषोऽलङ्कारस्तेनैव तं मृत्युमन्तर्दधते ॥७॥

निम्न मन्त्र को पढ़कर घर की ओर आते हैं—

उद्वयं तमसस्परी स्वः पश्यन्तऽउत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमग्नम् ज्योति-

रुतमम् । यजु० ३५/१४



अन्धकार अर्थात् पितृलोक से चलकर प्रकाशमय आदित्य की ओर आते हैं। जब वे आते हैं तो उनको अञ्जन और महावर दिये जाते हैं। वे मनुष्यों के अलंकार हैं। इनसे वे अपने मृत्यु को दूर रखते हैं ॥७॥

अथ गृहष्वग्निं समाधाय । वारणान्परिधीन्परिधाय वारणेन  
स्रुवेणान्यऽआयुष्मतऽआहुतिं जुहोत्यग्निर्वाऽआयुष्मानायुष इष्टे तमेवैम्यः  
आयुर्याचित्यग्नेऽआयूँषि पवसऽइति पुरोऽनुवाक्या भाजनम् ॥८॥

अब घरों में अग्नि आधान करके वरण वृक्ष की परिधियाँ दे सकता है और वरण के ही सुवा से "अग्नि अयुष्मन्" के लिये आहुतियों को देता है आयु के अग्न आयुष्मत् का अधिकार है। वह उसी से आयु के लिये प्रार्थना करता है।

अग्नेऽआयूँषि पवसऽआसुवोर्जमिषं च नः ।

आरे वाधस्व दुच्छुनाम् । ३५/१६

यह प्ररोनुवाक्य है ॥८॥

अथ जुहोति । आयुष्मानग्ने हविषां वृधानो घृत प्रतीको घृतयोनि रेधि । घृतं पीत्वा मधु चारुं गव्यं पितेव पुत्रमभिरक्षतादिमान्त्स्वा हेति यथैवैनानभिरक्षद्यथाऽभिगोपायेदेवमेतदाह ॥९॥

अब निम्नलिखित मन्त्र से आहुति देता है—

आयुष्मानग्ने हविषां वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनि रेधि । घृतं पीत्वा मधु चारुं गव्यं पितेव पुत्रमभिरक्षतादि विमान्त्स्वाहाः । ३१/१७

यह इसलिये कहता है कि इन लांगों की रक्षा अग्नि करे ॥९॥

तस्य पुराणोऽनङ्गवान्दक्षिणा । पुराणा यताः पुराण्या सन्दी सोप वह्णैषाऽन्वादिष्टा दक्षिणा कामं यथाश्चद्रं भूयसी दद्यादितित्वग्निचितः ॥१०॥

इसकी बूढ़ा वैल ही दक्षिणा है। पुराने जो, पुरानी चीकी, यही दक्षिणा नियत की गई है। यदि अधिक देना चाहे तो देवे, यह उसके विषय में है जिसने अग्नि का चयन किया हो ॥१०॥

अथानग्निचितः । एतदेव-भूमि जोषणमेतत्समानं कर्म यदन्यदग्नि कर्मणः कुर्यादाहितान्तेः शर्कराऽइत्यु हैकऽआहुत्याऽएवाभूरन्यापेय शर्करास्नाऽएताऽइति न तथा कुर्यादित्येकऽईश्वरो हैताऽअनग्निचितः संतप्तोरिति स यथाकामयेत तथा कुर्यात् ॥११॥

जो अग्निचित नहीं है, उसके लिये भूमि का अन्वेषण उसी प्रकार से है, और कर्म भी समान है, केवल वेदी नहीं बनाई जाती। कुछ लोग कहते हैं कि आहितानि



पुरुष के लिये कंकड़ का प्रयोग करे यह तो वही है जो अग्नि आधेय के है, कुछ लोग कहते हैं कि इस प्रकार का न करना चाहिये, क्योंकि जो अग्निचित नहीं है, उसके लिये यह भारी होगा। परन्तु जैसा चाहे करे ॥११॥

मर्यादायाऽएव लोष्टमाहृत्य । अन्तरेण निदधातीमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरोऽर्थमेतम् । शतं जीवन्तु शरदः पुरुचीरन्तमृत्युं दधतां पर्वतेनेति जीवेभ्यश्चैवैतां पितृभ्यश्च मर्यादां पुरुची रन्तमृत्युं करोत्यसम्भेदाय तस्माद् हैतज्जीवाश्चपितर रुचं न संदृश्यन्ते ॥१२॥

सीमा से ढेला लाकर ग्राम और झमान के बीच में निम्न मंत्र से स्थापित करता है :—

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरोऽर्थमेतम् ।

शतं जीवन्तु शरदः पुरुचीरन्तमृत्युं दधतां पर्वतेन ॥३५/१५

मैं इसको जीवितों के लिये परिधि बनाता हूँ कि कोई और जीवित उधर न जाय। सौ वर्ष तक जीवे, और मृत्यु की पहाड़ के द्वारा अपने से दूर करे। इसको जीवित और पितृ लोक के बीच में सीमा बनाता है। जिससे आपस में मिल न जाय और न जीवित तथा पितर एक दूसरे को देख सकें ॥१२॥

ब्राह्मणम् । ८-४ चतुर्थप्रपाठकः ।

इति अष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥९१॥

अस्मिन् काण्डे काण्डिका संख्या १४३२।

माध्यन्दिनीये शतपथ ब्राह्मणेऽश्वमेधनाम त्रयोशशं काण्डम् समाप्तम् ॥१३॥

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम् । पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणम् ब्रह्म वर्चसम् । मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्म लोकम् ॥ अथर्व० १९।७।११





















